CHAPTER 47

SANSKRIT

Doctoral Theses

01. अमोल

नव्य व्याकरण में प्राच्य व्याकरण से सम्बन्धित आलोचनाओं का विवेचन (वैदिक प्रकरण छोड़कर)।

निर्देशक : प्रो. श्रीवत्स

Th27150

सारांश

समस्त प्राचीन भारतीय वैदिक ऋषि-मुनि तथा आचार्य इस विषय में सहमत हैं के 'वेद' अपौरूषेय तथा नित्य है। वैदिक ज्ञान से ही लोक का समस्त व्यवहार प्रचलित है। संस्कृत भाषा के जितने प्राचीन व्याकरण बने उनमें सम्प्रति एकमात्र पाणिनीय व्याकरण साङोग्पाङ रूप में उपलब्ध है। व्याकरण के क्षेत्र में महाभाष्य की मौलिक देन सर्वोपरि है। शुष्क सिद्धान्तों को लोकाश्रय या लोकव्यवहार के आधार पर सर्वबुद्धिगम्य बना देने का श्रेय तो महाभाष्य को है ही, मौलिक विचारों का समावेश, व्याकरण को दर्शन का स्वरूप प्रदान करने कर गौरव भी उसे प्राप्त है। पस्पशाह्निक में ही शब्द की परिभाषा देते हुए कहा है कि लोक में उस ध्वनि को ही शब्द कहते है, जिससे व्यवहार में पदार्थ का ज्ञान हो। पाणिनीय व्याकरण परम्परा में पातंजल महाभाष्य एवं वामन जयादित्य रचित काशिकावृत्ति सर्माधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थरत्न है। इन ग्रन्थों पर भी अनेक आख्याएँ एवं टीकाएँ लिखी गई है, जिनमें महाभाष्य पर भर्तृहरि लिखित महाभाष्य दीपिका, कैयट द्वारा रचित 'प्रदीप' एवं काशिका पर जितेन्द्रबुद्धिकृत न्यास एवं हरदत्त मिश्र कृत पदममंजरी प्रमुख है। प्राच्य व्याकरण का मूलग्रन्थ पाणिनीय अष्टाध्यायी है एवं नव्य व्याकरण का प्रतिनिधि ग्रन्थ भट्टोजि दीक्षित रचित सिद्धान्तकौमुदी है ।

विषय सूची

1. सुबन्त पदों की आलोचनाओं का विवेचन. 2.तिङन्त पदों की आलोचनाओं का विवेचन. 3. सूत्र अनुवृत्ति की आलोचनाओं का विवेचन. 4. सूत्र सम्बन्धी आलोचनाओं का विवेचन । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची ।

02. आर्य (कशिश)

साहित्यबिन्दु का समीक्षात्मक अध्ययन।

निर्देशक : प्रो. भारतेन्दु पाण्डेय

Th27197

सारांश

आचार्य छज्जूराम शास्त्री कृत शास्त्रीय ग्रन्थों में साहित्यबिन्दु सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसमें काव्यशास्त्र के समस्त तत्वों का यथासंभव संक्षिप्ततया समावेश किया गया है। यद्यपि यह ग्रन्थ सैद्धान्तिक रूप से

पूर्वाचार्यों की चिन्तन परंपरा का ही अपर प्रवाह है तथापि किन्चित् नवीन तत्वों के समावेश एवं खंडन-मंडन की शैली के फलस्वरूप चिन्तन शक्ति का विकास भी करता है । आलोककार ने भी कहा है -

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात् ।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः ।।

ग्रन्थ के आदि में बिन्दुकार ने आत्म-परिचय देते हुए सर्वप्रथम साहित्य की महिमा तथा शास्त्रातिशयिता दिखलाकर विषय को अधिगम्य बनाया । काव्यलक्षण में जगन्नाथ का खण्डन करते हुए भी 'रम्य' पद को ग्रहण किया । इसके पश्चात् काव्यफल, हेतु आदि के संदर्भ में यथापेक्षित भामह, वाग्भट एवं मम्मट आदि का अवलंबन किया जिससे न केवल आवश्यक तत्वों का समावेश हुआ अपितु उचिततमके समावेश से विविध - काव्यास्वादन भी पाठक वर्ग को हुआ। बिन्दुकार के ग्रन्थ का यह वैशिष्ट्य है कि मौलिक अवधारणाओं के समाहन तथा ध्वनिवादी आचार्यो के मत - संग्रहण के साथ ही आचार्य ने यथास्थान मम्मट, जगन्नाथ एवं विश्वनाथ सरीखे आचार्यो का भी खंडन किया है । आचार्य ने ग्रन्थ में गौ की महिमा, कुरूक्षेत्र का माहात्म्य, ब्राह्मणों की उत्कृष्टता, हिन्दु-धर्म की महानता, व्यक्तित्व की विनम्रता तथा समाज में व्याप्त कुरीतियों का भी साहित्य के द्वारा विवेचन किया है तथा अपनी सामाजिक चिन्ताओं को प्रकट किया है । आचार्य ने साहित्य के अतिरिक्त वेद, ज्योतिष, दर्शन, आयुर्वेद एवं विविध विद्याओं का विमर्श कर उन्हें ग्रन्थ में स्थान दिया है जिससे आचार्य की अनेक - शास्त्रज्ञता का भान होता है । इस प्रकार साहित्य बिन्दु सरल एवं संक्षिप्त होते हुए भी ध्वनिकार की काव्य - परंपरा का पोषक, भरतादि की नाट्यपरंपरा का परिवर्धक तथा मम्मट की संग्रहात्मिका दृष्टि का ही अवलंबक प्रतीत होता है । संक्षिप्त एवं सरल होने के साथ ही छात्रोपयोगी सिद्धान्तों एवं तत्वों तथा केवल श्लील उदाहरणों से परिपूर्ण होने के कारण यह ग्रन्थ सांस्कृतिक रूप से भी स्वीकरणीय है तथा वर्तमान गुरूकुल शिक्षा पद्धति में समाविष्ट करने योग्य है ।

विषय सूची

1. साहित्यबिन्दु में काव्य - लक्षणादि विचार. 2. साहित्य बिन्दु में शब्दार्थ - विचार. 3. साहित्यबिन्दु में दोष विचार. 4. साहित्यबिन्दु में गुण एवं रीति विचार. 5. साहित्यबिन्दु में अलंकार विचार । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची ।

03. आर्यः (शुभम)
शिवरामेन्द्रसरस्वतीकृत 'महाभाष्यरत्नप्रकाश' का समीक्षात्मक अध्ययन (पद्धितव्यवस्था सम्बन्धी सूत्रों के विशेष सन्दर्भ में)।
निर्देशक : प्रो. हरीश
Th26982

सारांश

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध प्रमुख रूप से संस्कृतव्याकरण में प्रत्ययों की सुदीर्घ पंक्ति में तद्धित प्रत्ययों का आश्रय लेकर प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में तद्धित प्रत्ययों को आधार बनाकर प्रत्येक सूत्र के सामान्यार्थ को सरल, सुबोध, सुगम भाषा शैली में प्रस्तुत करते हुए प्रश्नोत्तर शैली में निहित पातञ्जल महाभाष्य में विद्यमान तत् तत् सूत्रों पर भाष्यकार के गूढ विचारों को प्रस्तुत करते हुए प्रदीप, उद्योत, नारायणीय, न्यास, पदमञ्जरी, विवरण आदि अनेक टीकाओं के भावों को प्रदर्शित करते हुए समीक्षात्मक शैली में विरचित

शिवरामेन्द्रसरस्वतीकृत सिद्धान्तरत्नप्रकाश टीका की समीक्षा प्रस्तुत की गई है। सिद्धान्तरत्नप्रकाश में कैय्यट आदि आचार्यों के विभिन्न मतों का सुदृढ तर्कों, अन्तःसाक्ष्यों, उदाहरणों, न्यायों के आधार पर शिवरामेन्द्र सरस्वती कैसे खण्डन करते हैं, एवं प्रत्याख्यान करते हुए प्रत्येक सूत्र पर किए गए भाष्य के वास्तविक भाव को अपनी टीका में कैसे अवतरित करते हैं, यह बताने का भी प्रयास किया गया है । जहां पदे पदे कैय्यट आदि आचार्यों का खण्डन करते हुए रत्नप्रकाशकार दृष्टिगोचर होते हैं । शोध-प्रबन्ध को ८ अध्यायों में विभक्त किया गया है, जहां महाभाष्यकार पतञ्जलिकृतव्याकरणमहाभाष्य की विद्वत्परम्परा में शिवरामेन्द्रसरस्वतीकृत रत्नप्रकाश का महत्त्व प्रस्तुत करते हुए उसके अनेक बिन्दुओं पर चर्चा की गई है । यह बताने का प्रयास किया गया है कि ग्रन्थकार अपने मूल से कितना प्रभावित है, ग्रन्थकार ने अपने बुद्धिकौशल से इस ग्रन्थ में अपना भाव कितना प्रदर्शित किया है, साथ ही साथ अन्य आचार्यों के द्वारा लिखित ग्रन्थों से कितना ग्रहण किया है । इन सभी विषयों पर चर्चा करते हुए टीका की मौलिकता, स्वयंकृतसमुद्घोषणा, अन्यविद्वत्प्रमाण, इतिहासनिहितप्रमाण, अधुनापर्यन्त शोधकार्य, इन उपबिन्दुओं को उपस्थापित किया गया है। जहां कैय्यटादि के खण्डन में प्रयुक्त शब्द निरस्तम्, निरस्ताः, कल्पनाप्रसूतम्, प्रलपनम् कृतम्, प्रौढिवादमात्रम्, मौर्ख्यम्, मौढ्यम्, अस्मदुक्तमेव साधु, अस्मत्प्रकारेण वक्तुमुचितम्, आदि प्रत्याख्यानशब्दों से उनकी समीक्षात्मक शैली का भी बोध होता है ।

विषय सूची

1. गोत्रवाची, गोत्रापत्यवाची एवं युवापत्यवाची तद्धित प्रत्ययों की व्यवस्था. 2. अपत्यवाची तद्धित प्रत्ययों की व्यवस्था. 3. प्राग्दीव्यतीयार्थ पद्धित प्रत्ययों की व्यवस्था. 4. षष्ठयर्थक एवं चातुरार्थिक तद्धित प्रत्ययों की व्यवस्था. 5. समूहार्थ एवं अध्ययन परम्परा के बोधक अर्थ में विहित तद्धित प्रत्ययों की व्यवस्था. 6. शैषिक तद्धित प्रत्ययों की व्यवस्था. 7. टक् प्रत्ययाधिकृत विविधार्थक तद्धित सूत्रों की व्यवस्था. 8. विविधार्थक तद्धित सूत्रों की व्यवस्था । उपसंहार। सूत्रनुक्रमणिका । सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

04. अर्यालः (कृष्ण)
समासवादे जगदीशमतसमीक्षणम्।
निर्देशक : सोमवीर सिंघलः
Th26965

सारांश

नैयायिकेषु तु जगदीशः समासस्य लक्षणमेवं प्रास्तौत्-यादृशस्य महावाक्यस्यान्तस्तस्त्वा-दिर्निजार्थके। यादृशार्थस्य धीहेतुः स समासस्तदर्थकः।। इति ममापि शोधविषयः जगदीशाभिमतः समास एवास्ति। वैयाकरणेषु समासप्रक्रियाया वर्णनं विविधेषु शोधप्रबन्धेषु तैस्तैः विद्वद्भिः कृतमेवास्ति परं नैयायिकेषु वर्णितसमासप्रक्रियायां शोधकार्यमथवा तत्र विहितकार्यानि अपि अल्पीयांसि एवेति विदित एव विदुषाम्। अत एव मम शोधकर्तुः जागदीशीयसमासप्रकरणमादाय

शोधकार्ये प्रवृत्तिः। मया समासविषये समासवादे वा वदन्तु 'समासवाद' इति पदस्य प्रयोगः मया एतदर्थं विहितः यत् तार्किकाः समासे शक्तिं नैव मन्यन्ते। तेषां मते हि पदसमूह एव वाक्यं तथा च वाक्यरूपसमासे अपि पदशक्तिस्वीकारद्वारा एव वाक्यार्थबोधः सम्भवति इति कृत्वा यथा वाक्ये नैव शक्तिः तथैव समासे{पि शक्तिर्नैवेति। प्रकृते च शोधप्रबन्धे मया समासवादे जगदीशस्य किमभितमथ च तस्य मतस्य समीक्षण विहितम्। यत्र हि जगदीशः समासे शक्तिद्वारा हि शब्दार्थबोधो जायते इति कथयति। यतः समासे{भिधाया लक्षणाया च स्वीकृतिर्नैवास्ति इति प्रतिपादयति। कौण्डभट्टः यथा स्वग्रन्थे वैयाकरणभूषणसारे कथयति समासे खलु भिन्नैव शक्तिः पंकजशब्दवत्। बहूनां वृत्तिधर्माणां वचनैरपि साध्यते। स्यान्महद्गौरवं तस्मादेकार्थीभाव इष्यते।। इति यन्मतं तस्य मतस्य खण्डनं व्यपेक्षावादिनः नैयायिकाः कुर्वन्ति। समासे हि सर्वत्र व्यपेक्षाभावरूपसामर्थ्यस्य स्वीकारे अपि सिद्धे एकार्थीभावरूपसामर्थ्यस्य स्वीकारे युक्तिर्नैवास्ति इति मतं तार्किकानाम्। तथा च समासे कुत्रपि शक्तिर्नास्ति । समासान्तर्गताभ्यां शक्तिलक्षणाभ्यामेव तेषां तेषामर्थानां बोधस्य सम्भवात्। तथा च वैयाकरणादीनामाक्षेपः यथा पंकजादिशब्देषु योगरूढ्याख्यया शक्त्या शाब्दबोधस्योदयो भवति इति स्वीकरोति तथैव हि समासे अपि चित्रगुः नीलोत्पलमित्यादौ हि शक्तिः स्वीक्रियतामथवा समासे अपि शक्तिः स्वीक्रियन्तामिति। तथा सति तार्किकानामिदमभिमतं यत् अवयवार्थम् अजानता पुरुषेण समासार्थाे न बुध्यते इति कृत्वा तव मते अपि समासावयवपदेषु तदर्थाेपस्थित्यर्थं वृत्तेरावश्यकता भवत्येव मम मते तु वृत्तिमात्रेणैव शाब्दबोधः सम्भवति इति लाघवम्। तेनैव च शाब्दबोधरूपस्य इष्टस्य सिद्धत्वात् समासे शक्तिः नैवाघ्गीकार्या इति तार्किकाः। इदमेवाभिमतमाचार्यस्य जगदीशस्यापि अत एव स्वग्रन्थे शब्दशक्तिप्रकाशिकायामपि इदमुक्तम्- 'न चैवं चित्रगुरित्यादावपि चित्रगोस्वाम्यादौ समुदायस्य शक्तिप्रसंगः। समासत्वस्याविशिष्टत्वादिति वाच्यम्। अगृहीतावयववृत्तिकस्य पुंसः ततः अर्थाधिगमेन अवयवानां वृत्तेरवश्यापेक्षायां तेषामेव तथाविधार्थबोधकत्वौचित्यस्य वक्ष्यमाणत्वादिति। एवंरूपेण मया स्वशोधकार्ये यथामति समासवादविषयकः चर्चा विहितः यत्र अत्यन्तं परिश्रमेण न्यायमीमांसाव्याकरणमतानि चर्चितानि। यद्यपि आचार्यगदाधरभट्टाचार्यः आचार्यजगदीशश्च समकालिकौ एव प्रायशः नव्यन्यायपरम्परायां तयोरुभयोरपि समानमेव योगदानं परं यदि वयं पश्यामश्चेद् गदाधरमादाय बहु कार्यमभूत् जगदीशापेक्षया। अथ च आचार्यजगदीशविरचितशब्दशक्तिप्रकाशिकग्रन्थस्य समासप्रकरणमादाय अद्यावधि केनापि शोधकार्यं न विहितं न केवलं समासप्रकरणमपितु जगदीशमादायापि कार्यं बहु न्यूनमेवास्ति विदुषाम्अत एव तमाधारीकृत्य मयेदं शोधकार्यं यथामति साधितम्। 'जगदीशस्य सर्वस्वं शब्दशक्तिप्रकाशिका' इति हि विद्वत्सु भणितिः। अहमत्र इदमपि विज्ञापयितुमिच्छामि यत् इदं मम कार्यं लोकोपकारि छात्रेपकारि समाससम्बन्धविषयकं प्रमेयबहुलं च सेत्स्यति।

विषय सूची

1. शब्दस्वरूप विचारः 2. शाब्दबोधस्वरूपविवेचनम्. 3. तार्किकादीनां मते समासस्वरूपविमर्शः 4. जगदीशमतेसमासविभागनिरूपणम् 5. जगदीशनयेऽव्ययीभावादिसमासनिरूपपणम् 6. समासवादे जगदीशमत-समीक्षा। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थसूची।

05. आशुतोष कुमारः

अलङ्कारदप्पणस्य समीक्षात्मकम् अध्ययनम्।

निर्देशक : प्रो. भारतेन्दु पाण्डेयः

Th26962

सारांश

महाकविकालिदासप्रणीत-कुमारसंभवमहाकाव्ये भगवतीसरस्वती नवपरिणीतयोः भवानीशङ्करयोः, संस्कारपूतया संस्कृतभाषया भवान्याः अभिवन्दनं समाचरित। कविकुलगुरोः श्लोकेनानेनन केवलं संस्कृतप्राकृतयोः परस्परसम्बन्धविषयेअपितु वाग्ड्मये तयोः का प्रकृतिः का च स्थितिः इत्यस्यापि अनुमानं भवत्येव। अलङ्कारदप्पणाख्योऽयं ग्रन्थः संस्कृतप्राकृतकाव्यशास्त्रपरम्परायामप्रथितः सन्नपि महत्वं भजति। अत्र प्रतिपादितालङ्काराः अलङ्कारवादिपरम्परया सुवासिताः दृशन्ते। अस्य अज्ञातकर्त्ता भामहमनुकुर्वत्रपि स्वस्यापि कन्चित वैशिष्टयं भजति । यद्यपि प्राकृतगाथानां अलङ्कार शास्त्रग्रन्थेषुबाहुल्येनोपस्थिति। दृग्गोचरीभवति किन्तु अलङ्कारशास्त्रपरम्परायं स्वतन्त्रतया प्राकृतभाषशम् अलङ्कारशास्त्रमभिलक्ष्य लिखितानां ग्रन्थानां प्रायः अभावो दृश्यते, अलङ्कारदप्पणगतसामग्रयाः संस्कृत काव्यशास्त्रपरम्परायाः प्रकाशे अध्ययनं अस्मद्विहितम्।

विषय सूची

1. अलङ्कारदप्पणस्य परिचयात्मकम् अध्ययनम्. 2. अलङ्कारदप्पणे शब्दांलङ्काराः 3. अलङ्कारदप्पणे अर्थालङ्काराः. 4. अलङ्कारदप्पणे पूर्वपरम्परायाः प्रभावः. 5. अलङ्कारदप्पणस्य नवीनाः उद्भावना । उपसंहार। सन्दर्भग्रन्थाः।

06. आशुतोष कुमार

षट्त्रिंशत् काव्यलक्षण एवं कालिदास की नाट्यकृतियों में उनका अनुप्रयोग।

निर्देशक : प्रो. अजय कुमार झा

Th27151

सारांश

नाट्यशास्त्र में वर्णित विषय संस्कृत के साथ-साथ विश्व की सभी भाषाओं के साहित्य के लेखन एवं समीक्षा के लिए आधारभूत संकल्पनाओं कों प्रस्तुत करने का कार्य करता है । नाट्यशास्त्र के बाद संस्कृत साहित्य में लिखे गये सभी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का उपजीव्य यह शास्त्र है । आचार्य भरत की दृष्टि अलंङ्कारों की तुलना में काव्यलक्षण में अधिक प्रखर है । भरत मुनि के समक्ष ऐसे ग्रन्थ विद्यमान थे जिनमें उने स्वरूप और उनकी संख्या सुनिश्चत की थी । काव्यचिंतन की दृष्टि से भरतमुनि के षट्त्रिंशत् काव्यलक्षण का महत्व गुणों तथा अलङ्कारों से भी अधिक है, इसीलिए नाट्यशास्त्र के सोलहवें अध्याय में काव्यनिरूपण की पीठिका उपस्थित करते हुए पन्द्रहवें अध्याय के अंतिम पद्य में आचार्य ने काव्यबन्ध को षट्त्रिंशत काव्यलक्षणों से युक्त बनाने का निर्देश दिया है, वे कहते है - काव्यप्रबन्ध को षट्त्रिंशत काव्यलक्षण से युक्त होना चाहिए - काव्यबन्धास्तु कर्तव्याः षट्त्रिंशल्लक्षणान्विताः । एतदनन्तर

सोलहवें अध्याय में उन षट्त्रिंशत्काव्यलक्षणों का विस्तार से निरूपण किया है । काव्यशास्त्र के सभी प्रमुख आचार्यो ने अपने ग्रन्थों में षट्त्रिंशत् काव्यलक्षण को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । परन्तु आधुनिक काव्यशास्त्रीय समालोचना मे काव्यलक्षण एक गौण तत्व के रूप में ही परिलक्षित हुआ है । प्रसिद्ध काव्यशास्त्रीय समालोचक प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी, प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र में भरत प्रोक्त षट्त्रिंशत् काव्यलक्षण को कोई विशेष स्थान नहीं दिया है । काव्यलक्षण केवल प्रमुखता के परिचायक है जिन गद्यांशो तथा पद्यांशों को इस शोधप्रबन्ध में प्रस्तुत नहीं किया गया है उनमें भी किमसी न किसी रूप में काव्यलक्षण दृष्टिगत होते हैं । शोध प्रबन्ध पृथुकाय न हो जाये इसलिए यहां महाकवि कालिदास के सम्पूर्ण नाटकों के गद्यांशों को प्रस्तुत नहीं किया गया है । अनेक काव्यशास्त्रीय आचार्यो ने महाकवि कालीदास के नाटकों के उद्धरणों को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया गया है । जैसे अभिनवगुप्त, भोजराज, सागरनन्दी विश्वनाथ तथा सिंहभूपाल आदि ।

विषय सूची

1. काव्यलक्षण की पृष्ठभूमि. 2. काव्यालक्षणः स्वरूप विमर्श. 3. काव्यालक्षण एवं उसकी पाठ परम्परा. 4. भरतोत्तरवर्ती आचार्यो की दृष्टि में काव्यलक्षण. 5. मालविकाग्निमित्र में षट्त्रिंशत् काव्यलक्षण का अनुप्रयोग. 6. विक्रमोर्वशीय में षट्त्रिंशत् काव्यलक्षण का अनुप्रयोग. 7. अभिज्ञानशकुन्तल में षट्त्रिंशत् काव्यलक्षण का अनुप्रयोग। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

07. इन्द्रजीत कुमार
पाणिनीय एवं उत्तरवर्ती व्याकरणों में कारक तथा विभक्ति प्रकरणों की तुलनात्मक समीक्षा।
निर्देशक : प्रो. सत्यपाल सिंह एवं सह निर्देशक : अजित कुमार
Th27196

सारांश

आचार्य पाणिनी के अनन्तर भी व्याकरण की दिशा में जो नया चिन्तन-क्रम चलता रहा, तत्परिणामस्वरूप जहॉ विविध वैयाकरणों द्वारा पाणिनीय व्याकरण पर अनेक नये विवेचनात्मक ग्रन्थों का निर्माण कार्य किया गया । वहीं अनेक वैयाकरणों द्वारा टीकाओं और उपटीकाओं के रूप में निर्माण किया गया। वहीं कुछ नवीन परम्परायें भी विकसित होती हुई दिखाई देती है । जहॉ अनेक वैयाकरणों के द्वारा पाणिनीय व्याकरण से भिन्न नवीन व्याकरणों की रचना की गयी यह बात अलग है कि पाणिनी से परवर्ती नवीन परंपरा को प्रारम्भ करने वाले आचार्य पाणिनी के प्रभाव से अछूते नही थे । उनकी रचनाओं में पाणिनीय व्याकरण के प्रभाव की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है । शोध प्रबंध में पाणिनीय एवं उत्तरवर्ती व्याकरणों में कारक तथा विभक्ति प्रकरणों की तुलनात्मक समीक्षा यथा - सामर्थ्य विवेचनात्मक रूप में वर्णित कर दी गई है । इस शोधविषय से ज्ञात होता है कि इस शोध से एक महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है कि कतिपय आचार्यो को छोड़कर प्रायः सभी पाणिनी से उत्तरवर्ती वैयाकरण पाणिनि के ही सूत्रों का अनुकरण करते प्रतीत होते है । इस तथ्य को प्रस्तुत शोध में यथा - स्थान विवेचित भी किया गया है । निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शोध - प्रबंध में पाधिनी एवं उत्तरवर्ती व्याकरणों में करक को क्रिया का निर्वर्तक, क्रिया का जनक या क्रिया का सम्पादक माना है। कर्ता, कर्म, करण आदि को अभिव्यक्त करने के लिए प्रथमा, द्वितीया आदि विभक्तियॉ होती है, केवल कारकों को ही द्योतित नहीं करती अपितु अन्य अर्थो को भी द्योतित करती है । जिस प्रकार आचार्य पाणिनि ने कारक को कोई परिभाषा नही दी है । तथापि काशिकाकार ने 'निमित्तपर्याय' को ही कारक माना है तथा महाभाष्यकार पंतंजलि ने कारक का व्याख्यान करते हुए करोतीति कारकम् कहा है।

इसी के आगे कारक को लोग कहते है कि 'विवक्षातः कारकाणि भवन्ति' अर्थात् कारकों का व्यवहार व्यक्ति कि इच्छा पर निर्भर करता है । इसी बात को क्रमदीयवर ने संक्षिप्तसार व्याकरण में सूत्र के रूप में विधान किया है। 'विवक्षावशात् कारकाणि भवन्ति' जैसे स्थाली पचति-कर्ता, स्थाल्या पचति-करण, स्थाल्यां पचति-अधिकरण इत्यादि। उत्तरवर्ती व्याकरण ग्रन्थों में कारक एवं विभक्ति सूत्रों को पाणिनीय सूत्रशैली में ही कतिपय परिवर्तनों के साथ उल्लेखित किया गया है। कारक और विभक्ति पर विषय विचार की दृष्टि से भी प्रायः सभी उत्तरवर्ती आचार्य पाणिनी का ही अनुसरण करते हुए दृष्टिगोचर होते है। अतः कारक एवं विभक्ति पर तुलनात्मक दृष्टि से भी पाणिनी एवं उत्तरवर्ती आचार्य अभिन्न ही प्रतीत होते है।

विषय सूची

1. पाणिनीय व्याकरण में कारक की परिभाषा एवं स्वरूप. 2. पाणिनीय व्याकरण में कर्म की परिभाषा, स्वरूप एवं उनकी अभिव्यंजक विभक्तियॉं. 3. पाणिनीय व्याकरण में करण की परिभाषाए स्वरूप एवं उनकी अभिव्यंजक विभक्तियॉं. 4. पाणिनीय व्याकरण में सम्प्रदान की परिभाषा, स्वरूप एवं उनकी अभिव्यंजक विभक्तियॉं. 5. पाणिनीय व्याकरण की परिभाषा, स्वरूप एवं उनकी अभिव्यंजक विभक्तियॉं. 6. पाणिनीय व्याकरण में अधिकरण की परिभाषा, स्वरूप एवं उनकी अभिव्यंजक विभक्तियॉं । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

08. कुलदीप कुमार
महाभाष्यप्रदीप की नारायणी टीका में तद्धितविषयक - विमर्श : एक समीक्षात्मक अध्ययन।
निर्देशक : प्रो. ओमनाथ बिमली
Th26964

सारांश

तद्धित शब्द का अर्थ है- तेभ्यः प्रयोगेभ्यः हिताः इस विग्रह में चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः" सूत्र से चतुर्थी तत्पुरुष समास होकर तद्धित रूप सम्पन्न होता है। अर्थात् ऐसे प्रत्यय जो विभिन्न प्रयोगों के लिए उपयोगी हो। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि में जिन प्रत्ययों को जोड़ने से कुछ अन्य अर्थ भी निकल आता है, उन प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं। यथा-दितेः अपत्यम् इस अर्थ में दितेः अर्थात् दिति इस समर्थ प्रातिपदिक से दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः सूत्र से ण्य प्रत्यय करने पर णकार की चुटू सूत्र से इत् संज्ञा तस्य लोपः " सूत्र से लोप करने पर दिति+डस्+य इस स्थिति में कृत्तद्धितसमासाश्व` सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा सुपोधातुप्रातिपदिकयोः दिति य` इस स्थिति में `तद्धितेष्वचामादेः` सूत्र से आदि अच् को वृद्धि ऐ आदेश यस्येति च सूत्र से इकार का लोप होकर `दैत्य` इस स्थिति में एकदेशविकृतमनन्यवत् इस परिभाषा के नियम से प्रातिपदिक संज्ञा में `स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप सूत्र से सुप्रत्यय उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत्` सूत्र से इत् संज्ञा `तस्य लोपः सूत्र पर खरवसानयोविसर्जनीयः सूत्र से रेफ के विसर्ग होने पर दैत्यः रूप सिद्ध होता है। यहाँ दिति शब्द से ण्य प्रत्यय होने पर दिति के पुत्र दैत्य का बोध होता है।इसी प्रकार `कषायेण रक्तम्` इस अर्थ में तेनरक्तं रागात्

सूत्र से अण् प्रत्यय अनुबन्ध लोप आदि रंग से रंगे हुए वस्त्र आदि का बोध होता है। कृत् तथा तद्धित में अन्तर तिङ् भिन्न कृत् प्रत्यय धातु से होते हैं तथा संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय शब्दों का निर्माण करते हैं। तथा तद्धित प्रत्यय कृत् प्रत्ययों से निष्पन्न संज्ञा सर्वनाम, विशेषण अव्यय अथवा क्रिया के बाद विहित होकर उनसे अन्य संज्ञा, विशेषण अव्यय तथा क्रिया शब्दों का निर्माण करते हैं। यथा-सर्वे इमे पचन्ति इत्ययमेषामतिशयेन पचति पचतितमाम् यहाँ पचति इस तिङन्त शब्द से भी तिङश्च सूत्र से अतिशायन द्योतित होने पर तिङन्त से भी तमप् प्रत्यय होता है। ङ्याप्प्रातिपदिकात् अधिकार होने से प्रातिपदिकान्त से ही प्रत्यय प्राप्त थे। तिङन्त से तद्धित प्रत्ययों का विधान कर दिया। वस्तुतस्तु शब्द तो नित्य होता है। भर्तृहरि ने तो शब्द को शब्दब्रह्म कहा है। अर्थात् ब्रह्म की तरह एकरूप विकार तथा अखण्ड होता है तथा च- अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् । अर्थात् शब्दतत्व अनादिनिधनम् आदि अन्त से रहित अक्षरम् अविनाशी अखण्ड ब्रह्म ब्रह्मस्वरूप होता है। तथापि व्याकरणशास्त्र के निर्वाह के लिए प्रकृति-प्रत्यय की कल्पना की गई है इन्द्र से पूर्व अविभाग व्याकरण प्रचलित था। अविभाग व्याकरण वह है जिसमें प्रकृति-प्रत्ययादि के विभाग की कल्पना से रहित शब्दों का पारायण मात्र होता है। महाभाष्य के अनुसार अविभाग व्याकरण को शब्द पारायण कहा जाता था। बृहस्पति ने इन्द्र को इसी अविभाग रूप शब्द पारायण का प्रवचन किया था तथा च- बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच ।` सविभाग व्याकरण वह है जिसमें प्रकृति-प्रत्यय के विभाग की कल्पना की महाभाष्य प्रथम अध्याय, प्रथम आह्निक जाती है। तैत्तिरीय संहिता तथा महाभाष्य में उल्लिखित विभाग की कल्पना को स्पष्ट करने का प्रथम श्रेय आचार्य इन्द्र को ही जाता है। तथा च- तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्। प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः

विषय सूची

1. तद्धित प्रत्यय विमर्श. 2. नारायणी के आलोक में अपत्यादि तद्धित प्रत्ययों का विमर्श. 3. नारायणी के आलोक में शैषिकादि तद्धित प्रत्ययों का विमर्श. 4. नारायणी के आलोक में छयद्विध्यादि प्रत्ययों का विमर्श. 5. नारायणी के आलोक में भवनार्थकादि तद्धित प्रत्ययों का विमर्श. 6. महाभाष्य की महत्ता में नारायणी टीका का अवदान । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची ।

09. ज्वलन्तकुमारः
अष्टाध्याय्याः सूत्रक्रमायोजने बलाबलत्वविमर्श।
निर्देशक : डॉ. सोमवीर सिंघल
Th27152

सारांश

तद्स्यैव सकलशब्दार्थज्ञानविदो दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेराचार्यस्य वैज्ञानिकीं पद्धतिमनुसृत्य विरचिता मानवमस्तिष्कस्य सर्वश्रेष्ठा अनुपमा च कृतिर्विद्यते अष्टाध्यायी। अद्यत्वे हि यत्र - कुत्रापि भुवि व्याकरणस्य पाठः पठयते तत्राचार्यपाणिनेः नाम सादरं सस्मर्यते, यतोहि प्रायशः सर्वासामपि भाषणां विनियामकं व्याकरणमष्टाध्याय्याः सूत्रेष्वेव अनुस्यूतं उक्तं च - सूत्र योनिरिहार्थानां सर्व सूत्रे प्रतिष्ठितम्। अस्मिन् शोधप्रबन्धे मयाऽनेकेषां व्याकरणग्रन्थाना विविधाः टिप्पणयः तत् - तत् स्थलेषु विषयावगमनाय प्रदत्ताः सन्ति। ममायं शोधप्रबन्धः पंचसु अध्यायेषु विभक्तोऽपि सूत्राणां बलाबलत्वमेव विज्ञाप्यतेऽतः यत्र तत्रोद्धृतानि अष्टाध्यायाः सूत्राणि एव प्रायशः दृश्यन्ते, परन्तु व्याखयाप्रसंगे त्वाचार्यपतंजलेः महाभाष्यस्यापि मतं सादरमुपन्यस्तं वर्तते, यतः शंकसमाधानविषये पतंजलेः नान्यो गरीयः । एतद्नन्तरं सामान्यार्थस्य विज्ञापने आचार्यजयन्द्रवामनयोः सूत्रार्थप्रकाशिकायाः काशिकाया उद्धरणमपि सम्यक् रूपेणोपन्यस्तम्। अथ च विवरणं व्याख्यातुं काशिकाविवरणपंचिकापरनाम न्यासः, हरदत्तमिश्रस्य पदमंजरी सिद्धान्तकौमुदीत्यादीनां महनीयग्रन्थनां साहाय्यं, मयाऽस्य शोधप्रबंधस्य पूर्त्यर्थ नीतम् आशासे मयायं शोधप्रबन्धः विबुधां जिज्ञासाशमनाय, शोधार्थीनां च कृते पथप्रदशकों भविष्यति ।

विषय सूची

1. अवतरणिका. 2. पारिभाषिको बलाबलत्वनिर्णयः. 3. पूर्वतार्सिद्धीयो बलाबलत्वनिर्णयः. 4. आभीयो बलाबलत्वनिर्णयः. 5. आभीयर्तिपादीतरसूतरे्षु बलाबलत्वनिर्णयः. । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

10. जलज कुमार
ऋग्वेदीय आदित्य सूक्तों का समीक्षात्मक अध्ययन : सायण भाष्य के परिप्रेष्य में।
निर्देशक : डॉ. विजय शंकर द्विवेदी
Th26967

सारांश

ऋग्वेदीय आदित्य सूक्तों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत शोध कार्य करने (सायण भाष्य के परिप्रेक्ष्य में) की प्रेरणा वैदिक साहित्य ग्रन्थों के अध्ययन से प्राप्त हुई। वेद भारतीय साहित्य ही नहीं विश्वसाहित्य की प्राचीनतम उपलब्ध कृति है। भारतीय धर्म एवं संस्कृति का मूलाधार वेद ही है। भारतीय परम्परागत दृष्टि वेद को मनुष्य के लिए अपेक्षित सम्पूर्ण ज्ञान की शाब्दिक अभिव्यक्ति के रूप में देखती है। 'वेद' शब्द की निष्पत्ति विद् धातु से 'भाव, कर्म और करण' अर्थ में घञ् प्रत्यय के द्वारा सिद्ध होता है। अतः वेद शब्द का अर्थ ज्ञान, ज्ञान का विषय तथा ज्ञान का साधन किया जाता है। वेदों के रहस्यों को स्पष्ट करने के लिए प्राचीन काल से ही मनुष्य प्रयासरत है। वेदाङ्गों एवं उपाङ्गों आदि की रचना इसी उद्देश्य से की गई थी। वेदों के व्याख्या ग्रन्थों की भी रचना की गई थी। किन्तु वेदभाष्य करने का यत्न नहीं किया गया था। इसका एक तो कारण यह हो सकता है कि वेदों के आविर्भावकाल से तथा उसके - अध्यापन मौखिक परम्परा के आधार पर होता रहा -पश्चात् भी अधिकांश समय तक वेदों का अध्ययन था। परम्परा के आधार पर एक दूसरे को वेदार्थ का ज्ञान कराया जाता था। जिसे श्रुति परम्परा के नाम से जाना जाता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रबन्ध में मुख्य रूप से ऋग्वेद में वर्णित आदित्य देवता के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। प्रायः यह भाव देखने को मिलता है कि आचार्य सायण ने मन्त्रों की याज्ञिक व्याख्या ही प्रस्तुत की है, किन्तु इस प्रबन्ध के माध्यम से आदित्य देवता से सम्बन्धित मन्त्रों की आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधियाज्ञिक,

आख्यान, ऐतिहासिक, आयुर्वेदीय, अधिज्योतिष आदि प्रक्रियाओं को सायण भाष्य में जानने का प्रयास किया गया है।

विषय सूची

1. वैदिक देवताओं का मूल स्वरूप. 2. ऋग्वेद में आदित्य : एक परिचय. 3. सायण के आदित्य विषयक चिन्तन की समीक्षा. 4. विविध भाष्यकारों के सन्दर्भ में आदित्य भाग. 5. ऋग्वेदेतर ग्रन्थों में आदित्य का स्वरूप । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

11. डिम्पल

शारदा लिपि की उत्पत्ति एवं विकास : उत्तरी पश्चिमी पाकिस्तान, जम्मू-कश्मीर एवं हिमाचल प्रदेश के सन्दर्भ में।

निर्देशिका : प्रो. पूर्णिमा कौल

Th26968

सारांश

भारत की प्राचीन लिपियों में शारदा लिपि का स्थान सर्वोपरि है । शारदा लिपि की उत्पत्ति का समय दसवीं शताब्दी में उत्तर - पूर्वी पंजाब और कश्मीर में ही प्राप्त हुआ है । फोगल ने चंबा राज्य से शारदा लिपि के बहुत से अभिलेख प्राप्त किए है फोगल ने चंबा में सराहनीय कार्य किया है । भारतीय ग्रंथो में लिपि की उत्पत्ति और विकास के लिए विस्तृत भण्डार है ये कहां से प्रारम्भ हुई कैसे हुई इत्यादि अनेक मत है की लिपि को स्त्रीलिंग शब्द का नाम दिया गया है । प्राचीन समय में ही विद्वानों ने लिपियों को पढ़ने का प्रयत्न किया परन्तु लिपियों के निरन्तर निरन्तर बदलाव से लोग ये लिपियां पढ़ना भूलते गए। यूरोपीय विद्वानों ने भारत में अपनी कम्पनियों के पश्चात नव-अर्जित राजनीतिक सत्ता को चिरस्थाई बनाया तथा भारत के इतिहास - संस्कृति के स्त्रोतों की जानकारी करना प्रारम्भ किया 1874 ईस्वी में लिपि शास्त्र पर सर्वप्रथम ए. सी बर्नल की 'साउथ इंडियन पेलयोग्राफी का प्रकाशन हुआ, जेम्स बर्गेस ने पश्चिम भारत से प्राप्त अभिलेखों को संग्रहित किया जेम्स प्रिसेप ने ब्राह्मी लिपि की वर्णमाला को परिपाटित किया तथा खरोष्ठी लिपि को भी किया । शारदा लिपि गुप्तलिपि की पश्चिमी शैली से मानी जाती है, ये भारत के उत्तरी-पश्चिमी भागों में उत्पन्न हुई है। शारदा लिपि को शारदा देश में उत्पन्न होने से शारदा कहते है। शारदा लिपि भारत के उत्तर-पश्चिमी देशों के विभिन्न भागों में उत्पन्न हुई गांधार सहित पंजाब के कुछ हिस्सों में, लद्दाख, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, कश्मीर तथा दिल्ल में भी कश्मीर की इस लिपि का एक अभिलेख मिलता है। पाकिस्तान में दवई के एक राजा भीमदेव शाही तथा हुण्ड से विजयपाल 950 ई. जयपाल 10वीं शती रानी कामेश्वरी 11 शताबदी में, वण्हडक पन्द्रहवीं शतसब्दी तथा लाहौर संग्रहालय में भी कुछ अभिलेख रखे हुए है । भारत से बाहर के देशों में भी शारदा लिपि के उदाहरण मिलते है जापान में, बाली में, तिब्बत में इन- इन देशों में भी शारदा लिपि के उदाहरण मिलते है। वास्तव में ही कश्मीरी भाषा के लिए शारदा लिपि ही उत्तम है तथा भाषा की प्रकट ध्वनियों, सटीक बोलने की क्षमता तथा तकनीक धारण करने वाली वैज्ञानिक लिपि है ।

विषय सूची

1. शारदा लिपि की उत्पत्ति. 2. शारदा लिपि का नौवी शताबदी से चौदहवीं श्ताब्दी तक विकास. 3. शारदा लिपि का विकसित स्वरूप. 4. शारदा लिपि से अन्य परिवर्तित लिपियॉं. 5. शारदा लिपि कि महत्वपूर्ण अभिलेख एवं उनकी प्रतियॉं । निष्कर्ष। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची। परिशिष्ट।

12. धन्नजय कुमार
कृष्णमिश्रविरचित पदार्थरत्नमंजुषा का समीक्षात्मक अध्ययन।
निर्देशक : डॉ. अवधेश प्रताप सिंह
Th26970

सारांश

पदार्थरत्नमंजुषा ग्रंथ ठीक इसी प्रकार वैशेषिक दर्शन के रत्न सिद्धान्तों को सुगम और संक्षिप्त प्रतिपादित करने से अन्वर्थनामा प्रतीत होता है । अतः शब्दार्थ हुआ 'पदार्थ रूपी रत्नों की काष्ठपेटिका। प्रारम्भ में आठ श्लोकों में कृष्णभट्ट ने जो मंगल किया है उससे दो बाते फलित होती है। प्रथम तो ये की वे किसी एक देव के नहीं किन्तु अनेक देवताओं श्री गणेश, विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओं में श्रद्धा रखते थे ग्रंथकार बहुदेववाद के सम्प्रचारक थे और उसमें विश्वास रखते थे इनके गुरू का नाम मंचीश था, जिनसे उन्होंने मीमांसा दर्शन का अध्ययन किया था। इस शोध-प्रबन्ध के अध्ययनोंपरांत पदार्थरत्नमंजूषा एक समुचित तर्कशील तथा वैशेषिक दर्शन का शुद्ध विवेचक प्रकरण ग्रन्थ ज्ञापित होता है व पदार्थरत्नमंजुषाकार कृष्णमिश्राचार्य का रचना कौशिक उत्कृष्ट कोटि का था ऐसा व्यक्त होने लगता है क्योंकि अत्यन्त विस्तृत कणादीय दर्शन का माच 321 श्लोकों में समाहित करना एक कठिन से कठिन एवं पेचींदा कार्य है फिर भी आचार्य के द्वारा अत्यन्त सहज से सहज भावों से व्यक्त करते हुए श्लोकमय ज्ञेयता प्रदान कर दिया गया है। इसी प्रकरण ग्रन्थ का 'श्री कृष्णमिश्र' विचरित 'पदार्थरत्नमंजूषा का समीक्षात्मक का अध्ययन' नामक शीर्षक वाले इस शोध-प्रबन्ध में समीक्षा किया गया है। ऐसा स्पष्ट करते हुए यह प्रकृत शोध - प्रबन्ध अपने पूर्णता को प्राप्त कर लेता है ।

विषय सूची

1. मङ्गलाचरण सहित सप्त पदार्थ परिचय एवं द्रव्यविवेचन. 2. गुण पदार्थ विवेचन. 3. कर्म पदार्थ विवेचन. 4. सामान्य पदार्थ विवेचन. 5. विशेष-पदार्थ-विवेचन. 6. समवाय-पदार्थ-विवेचन. 7. अभाव-पदार्थ-विवेचन. 8. मोक्ष-स्वरूप-विवेचन। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची। परिशिष्ट।

13. नीरज
पाणिनीय व्याकरण परम्परा में सकर्मकत्व अकर्मकत्व एक अध्ययन
निर्देशक : प्रो. हरीश
Th26971

सारांश

प्रस्तुत शोध प्रबंध 'पाणिनीय व्याकरण परम्परा में सकर्मकत्व अकर्मकत्व एक अध्ययन' में प्रमुख रूप से भाषा की मूल इकाई धातु, धातुओं के अर्थ, धातुओं के सकर्मकत्व अकर्मकत्व

विषयों पर विस्तार से लिखने के साथ-साथ व्याकरण के अन्य प्रमुख अंशों क्रिया, उपसर्ग, निपात, वाक्य, वाक्यार्थ, द्विकर्मक धातुऐं आदि पर भी विस्तार से लिखा है। धातु किस-किस अर्थ में सकर्मक एवं किस-किस अर्थ में अकर्मक होती है। इसको जाने बिना हम शुद्ध भाषा न बोल सकेंगे न लिख सकेंगे, क्योंकि संस्कृत में लकार व्यवस्था का प्रमुख आधार धातु का सकर्मक अकर्मक भाव है यदि धातु सकर्मक होता है तो लकार (क्रियारूप) कर्तृवाच्य एवं कर्मवाच्य में होंगे यदि धातु अकर्मक तो लकार (क्रियारूप) कर्तृवाच्य एवं भाववाच्य में होगें। इसी प्रकार कृत्य, क्त, खलर्थ आदि प्रत्यय सकर्मक धातु से कर्मवाच्य में और अकर्मक धातु से भाववाच्य में होते हैं। प्रथम अध्याय - विषय प्रवेश (व्याकरण के विशिष्ट अंगों की विस्तृत समीक्षा) सकर्मक अकर्मक धातुओं के लिए उपयोगी एवं सहयोगी व्याकरण के विशिष्ट पदों का विवेचन इस (विषय प्रवेश) नामक प्रथम अध्याय में किया गया है। जैसे- क्रिया, धातु, उपसर्ग, निपात, वाक्य, वाक्यार्थ आदि। द्वितीय अध्याय - सूत्रपद्धतिकृतग्रंथों में सकर्मकत्व अकर्मकत्व (महाभाष्य एवं काशिका के विशिष्ट अंश) धातुओं के सकर्मकत्व एवं अकर्मकत्व के विभाजन के लिए प्रस्तुत अध्याय अत्यंत आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत अध्याय में सामान्यतः काशिका एवं महाभाष्य में व्याख्यायित वे सूत्र जिनमें सकर्मक अकर्मक संबंधी विश्लेषण, व्याख्या, शंका, समाधान आदि हैं। तृतीय अध्याय - परमलघुमaaजूषा एवं वैयाकरणभूषणसार में धात्वर्थ स्वरूपः- धातुओं के सकर्मक अकर्मक वर्गीकरण के लिए धातुओं के अर्थों को जानना अत्यंत आवश्यक है। इस तृतीय अध्याय में धात्वर्थ के संबंध में विस्तार से चर्चा की है कि वास्तव में धात्वर्थ है क्या? धात्वर्थ में प्रधानता किसकी होती है। चतुर्थ अध्यायः- संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त सकर्मक अकर्मक धातुओं के विशिष्ट प्रयोग प्रस्तुत प्रबंध के चतुर्थ अध्याय में संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त ऐसे कुछ उदाहरणों को दिखलाया है। जिनमें मूलतः धातु सकर्मक है लेकिन किन्हीं विशेष कारणों से वह अकर्मक हो गई। दूसरा धातु अकर्मक है लेकिन विशेष कारणों से सकर्मक हो गई। पंचम अध्याय - पाणिनीय धातुओं का अर्थसहित सकर्मक अकर्मक वर्गीकरण प्रस्तुत प्रबंध के इस पंचम अध्याय में धातुओं के अर्थों के आधार पर समस्त गणों की सभी धातुओं के प्रसिद्ध अर्थों के साथ साथ उनके सकर्मकत्व अकर्मकत्व को बड़ी ही सूक्ष्मता से दर्शाया गया है। हमने कण्ड्वादि गण की धातुओं सहित संपूर्ण धातुपाठ की 2143 धातुओं के सकर्मकत्व अकर्मकत्व को एकैकशः दर्शाया है।

विषय सूची

1. व्याकरण के विशिष्ट अंगों की विस्तृत समीक्षा. 2. सूत्रपद्धतिकृतग्रंथों में सकर्मकत्व अकर्मकत्व. 3. परमलघुमन्जुषा एवं वैयाकरणभूषणसार में धात्वर्थ स्वरूप. 4. संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त सकर्मक धातुओं

के विशिष्ट प्रयोग. 5. पाणिनीय धातुओं का अर्थसहित सकर्मक अकर्मक वर्गीकरण । उपसंहार। संदर्भ ग्रथं सूची ।

14. बर्मण, हिमांशु

सामवेदीय गृह्यसूत्रों में वर्णित संस्कारों का समीक्षात्मक अध्ययन (गोभिल एवं खदिर गृह्यसूत्रों के सन्दर्भ में)।

निर्देशक : डॉ. विजयशंकर द्विवेदी

Th27195

सारांश

विश्व साहित्य के इतिहास में वैदिक साहित्य कों हम सर्वप्रथम साहित्य के रूप में जानते है । इस वैदिक साहित्य का प्ररम्भ संहिता काल से ही हुआ है । इस सम्पूर्ण वैदिक साहित्य को चार भागों में विभाजित किया गया है - संहिता, ब्राह्मण, आरणयक और उपनिषद् । संहिता में मंत्रों का संकलन किया गया है। इन्हीं मंत्रों का व्याख्या ग्रन्थ है ग्राह्मण ग्रन्थ, जिसमें यज्ञविद्या का रहस्य उद्घाटन किया गया है । इसीलिए ब्राह्मण - ग्रन्थों को 'कर्मकाण्ड' कहा गया है । आरण्यकों का विषय अरण्य में अनुशीलन से सम्बन्धित है इसलिए इसे उपासनाकाण्ड कहा जाता है । इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक ज्ञान, रहस्य विद्या, गुह्य ज्ञान आदि प्राप्त होने के कारण उपनिषद् ग्रन्थ को ज्ञानकाण्ड कहा जाता है । सूत्र साहित्य में उपनिषद् ग्रन्थ के बाद वेदांग को गिना जाता है, जिसमें अलौकिक और रहस्यात्मक ज्ञान की धारा संहिता, ब्राह्मण, आरणयक और उपनिषद् ग्रन्थों से होते हुए आयी है । एक प्रकार से कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय मनुष्यों के रहन - सहन, आचार - व्यवहार, विज्ञान, सामाजिक, राजैनैतिक तथा आर्थिक पृष्ठ - भूमि का मूल आधार है । मल रूप से संस्कार को मनुष्य के विश्वास, भावना और आशा आदि की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है । इन संस्कारों को एक प्रकार से धार्मिक क्रिया कहा जा सकता है, जिसके माध्यम से मनुष्य जीवन को परिष्कृत निश्चित दिशा प्रदान कि जाती है । इन धार्मिक क्रियाओं से ही मनुष्य को उत्तम उद्देश्य की ओर प्रेरित किया जा सकता है । इस संसार में प्रायः सभी समुदायों में किसी न किसी रूप में तो संस्कारों का पालन किया जाता है, परन्तु भारतीय संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है जिसमें संस्कारों की श्रृंखला अपूर्व ढंग से देखने को मिलती है । गृह्यसूत्रों में जिस ढंग से प्राचीन भारतीय संस्कृति की रूपरेखा देखने को मिलती है । उसे एक भव्य महल कहा जा सकता है क्योंकि उस महल का निर्माण अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया गया है । अन्ततः यह कहा जा सकता है कि इन संस्कारों के माध्यम से किसी भी मनुष्य के उसके अपने व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है, जिससे वह व्यक्ति स्वयं को परिष्कृत रूप से इा संसार के अनुरूप आचरण करता हुआ अपना चतुर्दिक विकास कर सकता है ।

विषय सूची

1. गृह्यसूत्र - अध्ययन. 2. जन्म से पूर्वकालीन संस्कार. 3. शैशवकालीन संस्कार. 4. शैश्वोत्तरकालीन संस्कार. 5. संस्कारातिरिक्त गृह्यकर्मत्र 6. गोभिल एवं खादिर गृह्यसूत्र में वर्णित विविध आयाम। उपसंहार। सन्दर्भ-ग्रन्थसूची।

15. पंवार, अतुल

भारतीय अभिलेखों में प्रतिबिंबित शासन व्यवस्था

निर्देशक : डॉ. राजवीर शास्त्री

Th26959

सारांश

अभिलेख इतिहास के पुनर्निर्माण विशेषकर प्रारंभिक भारत के राजनैतिक इतिहास के पुनर्निर्माण, के लिए सर्वाधिक मूल्यवान स्रोत रहे हैं और साबित हुए हैं । परंतु प्रस्तुत शोध प्रबंध में हम देखेंगे कि अभिलेख प्राचीन भारत की शासन व्यवस्था के विषय में जानकारी के ठोस साक्ष्य साबित हुए हैं तथा हमारी किस प्रकार इतिहास लेखन में सहायता करते हैं क्योंकि प्रसिद्ध इतिहासकार आर सी मजूमदार भी मानते हैं कि "ऐतिहासिक साक्ष्य के तौर पर अभिलेख साहित्यिक स्रोत से अधिक विश्वसनीय होते हैं क्योंकि अधिकतर साहित्यिक स्रोतों का काल अनिश्चित है और हजारों वर्षों में प्रतियों के रूप में इन्हें सुरक्षित रखने की प्रक्रिया के दौरान उनमें विशाल बदलाव अवश्य आए होंगे" । अभिलेख एक पाठय लेख होता है जो कि साहित्यिक शैली के साक्ष्य के काफी करीब होता है और साथ ही साथ अभिलेख एक पुरातात्विक कलाकृति भी है जो उस समय की भौतिक संस्कृति का एक हिस्सा है । अभिलेख पूरे ऐतिहासिक समय में विश्वव्यापी रहे हैं और यह भारतीय उपमहाद्वीप के संदर्भ में भी सत्य है । अभिलेख सबसे महत्वपूर्ण प्रमाणिक और विश्वसनीय स्रोतों में से एक है । रोमिला थापर के अनुसार , "प्रारंभिक अभिलेख इतिहास जानकारी के अंश होते हैं और यह ही वह तरीका है कि जिसमें उनका उपयोग किया जाता है। परंतु अभिलेख विभिन्न तरीकों से व्यक्त की गई इतिहासिक चेतना के प्रति संवेदनशीलता भी धारण करते हैं" । किसी भी विशेष महत्व एवं प्रयोजन के लिए लिखे गए लेख को अभिलेख कहा जाता है । यह सामान्य परिवारिक लेखों से भिन्न होता है। प्रस्तर, धातु अथवा किसी अन्य कठोर एवं स्थाई पदार्थ पर विज्ञापन प्रचार , स्मृति आदि के लिए उत्कृष्ट लेखों की गणना प्राय अभिलेख के अंतर्गत की जाती है । मिट्टी की तख्तियों तथा बर्तनों एवं दीवारों पर उत्खनित लेख अभिलेख की सीमा के अंतर्गत आते हैं। सामान्यतः किसी अभिलेख की मुख्य पहचान, उसका महत्व तथा माध्यम पर निर्भर करता है । अभिलेखों के लिए कड़े माध्यम की आवश्यकता होती थी । जैसे पत्थर, धातु ईट आदि । प्राचीन काल में यही काम अभिलेख को और शिलालेखों के माध्यम से किया जाता था। अभिलेख के लिए कड़े माध्यम जैसे पत्थर, धातु, ईंट, मिट्टी की तख्ती, काष्ठ, ताड़पत्र आदि की आवश्यकता होती थी । इसका कारण यह था कि सूचनाओं या राज घोषणाओं से किसी तरह की छेड़छाड़ या बदलाव ना किया जा सके। अभिलेख में अक्षर अथवा चिह्नों की खुदाई के लिए रूंखानी, छेनी, हथौड़े , (नुकीले), लौहशलाका अथवा लौहवर्तिका आदि का उपयोग होता था। प्रस्तुत शोध प्रबंध को निम्नलिखित छह अध्यायों में विभाजित किया है - प्रथम अध्याय: अभिलेखों का सामान्य परिचय द्वितीय अध्याय: मौर्यकालीन शासन व्यवस्था तृतीय अध्याय: सातवाहन कालीन शासन व्यवस्था चतुर्थ अध्याय : कुषाण कालीन शासन व्यवस्था पंचम अध्याय: गुप्त और गुप्तोत्तर कालीन शासन व्यवस्था षष्ट अध्याय: उपसंहार ।

विषय सूची

1. अभिलेखों का सामान्य परिचय. 2. मौर्यकालीन शासन वयवस्था. 3. सातवाहन कालीन शासन व्यवस्था. 4. कुषाण कालीन शासन व्यवस्था. 5. गुप्त और गुप्तोत्तर कालीन शासन व्यवस्था. 6. उपसंहार । संदर्भग्रंथ सूची।

16. पाण्डेय, अजीत कुमार
आचार्य गोविन्दचन्द्र पाण्डेय कृत सौन्दर्यदर्शनविमर्श का दार्शनिक विवेचन
निर्देशिका : प्रो. मीरा द्विवेदी
Th26963

सारांश

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में आचार्य पाण्डेय द्वारा लिखित सौन्दर्यदर्शविमर्श को आधार बनाकर तुलनात्मक-सौंदर्यशास्त्र पर किया गया यह शोध एक अभिनव प्रयास है, जिसमें सौन्दर्य और कला के मूल बिन्दुओं को उद्घाटित किया गया है। प्रस्तुत शोध-कार्य का उद्देश्य पाश्चात्य एस्थेटिक्स के सिद्धान्तो का परिचय और संस्कृत-वाङ्गमय में निहित ऐन्द्रीय प्रत्यक्ष सौन्दर्य की दार्शनिक मीमांसा है। इस शोधप्रबन्ध में छः अध्याय हैं। 1-आचार्य गोविंदचन्द्र पाण्डेय व्यक्तित्व और कृतित्व 2-सौन्दर्यशास्त्र की अवधारणा 3-सौन्दर्यदर्शनविमर्श में प्रतिपादित सौन्दर्य का स्वरूप 4-सौन्दर्यदर्शनविमर्श में प्रतिपादित रूपतत्त्व का दार्शनिक विवेचन 5-सौन्दर्यदर्शनविमर्श में प्रतिपादित रसतत्त्व का दार्शनिक विवेचन 6-सौन्दर्यदर्शनविमर्श पर सौन्दर्यशास्त्र के दार्शनिक चिंतकों का प्रभाव।

विषय सूची

1. आचार्य गोविन्दचन्द्र पाण्डेय : वयक्तित्व एवं कृतित्व. 2. सौन्दर्यशास्त्र की अवधारणा. 3. सौन्दर्यदर्शन विमर्श में प्रतिपादित सौन्दर्यशास्त्र का स्वरूप. 4. सौन्दर्यदर्शनविमर्श में प्रतिपादित रूपतत्व का दार्शनिक विवेचन. 5. सौन्दर्यदर्शनविमर्श में प्रतिपादित रसतत्व का दार्शनिक विवेचन. 6. 'सौन्दर्यदर्शनविमर्श' पर सौन्दर्यशास्त्र के दार्शनिक चिन्तकों का प्रभाव । निष्कर्ष। उपसंहार। सन्दर्भ - ग्रन्थसूची।

17. भट्ट, अरूण किशोर
संस्कृत व्याकरण परम्पराओं में स्त्रीत्व विमर्श : ऐतिहासिक सन्दर्भ में
निर्देशक : डॉ. धन्नजय आचार्य
Th26960

सारांश

संस्कृत व्याकरण की मूर्धाभिषिक्त एवं महनीय परम्परा को पल्लवित एवं पुष्पित करने में यद्यपि सभी व्याकरण सम्प्रदायों की भूमिका महत्वपूर्ण है तथापि इस भूमिका को भूमि प्रदान करने का कार्य पाणिनीय

व्याकरण किया है । संस्कृत की व्याकरण परम्पराओं पर दृष्टिपात करने के पश्चात् ज्ञात होता है कि प्रायः सभी वैयाकरणों ने उत्तरोत्तर व्याकरण को सरल एवं संक्षिप्त करने पर बल दिया है । व्याकरण को संक्षिप्त, संक्षिप्ततर एवं संक्षिप्ततम करने के इसी विचार ने संस्कृत वाङ्मय में इस महनीय परम्परा को विकसित एवं विस्तृत करने का कार्य किया है । प्रकृत शोध में स्त्रीप्रत्ययों के इस अध्ययन से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है । काव्यशास्त्र की परम्परा में यह माना जाता है कि जब वैयाकरण सब प्रकार से परास्त होता है तब ही वह निपातन करता है । यद्यपि निपातन को लश्राघनीय दृष्टि से न देखा जाता हो तथापि स्त्रीप्रत्ययों के अन्तर्गत आचार्यो ने निपातनात् शब्दों को सिद्ध करके भी विषय को संक्षिप्त करने का कार्य किया है । उत्तरवर्ती आचार्यो ने प्रचुर मात्रा में निपातन शब्दों को सिद्ध किया है - जैसे जैनेन्द्र व्याकरण में पाणिनीय निपातन के अतिरिक्त पति शब्द को पत्नी का निपातन किया है, शाकटायन व्याकरण में नारी, सखी, पङ्गू, श्रवश्रू, शब्द निपातन से सिद्ध होते है । उत्तरोत्तर मुग्धबोध व्याकरण तक इनकी संख्या में विशेष वृद्धि हो गई है - नारी, सखी, यवानी, यवनानी, हिमानी, अरण्यानी, मनावी, पतिवत्यान्तर्वत्नी, पत्नी, भाजी, गोणी, नागी, स्थली, कुण्डी, काली, कुशी, कामुकी, घटी, कवरी, नीली, अशिवनी, पद्धति, शक्ति, युवति, अनड्वाही श्रवेनी, एनी, हरिणी, भरिणी, रोहिणी, लोहिनी, असिक़ी, पलिक्त्री आदि। अवैदिक व्याकरणों का एक विशेष योगदान यह रहा कि पाणिनीय तन्त्रोक्त जो शब्द केवल वेद के ही अधिकार क्षेत्र तक ही सीमित थे उन शब्दों को भी इन व्याकरण संम्प्रदायों ने लोक में भी प्रयोगार्ह बनाया है ।

विषय सूची

1. पाणिनी व्याकरण का स्त्रीत्व विमर्श. 2. कातन्त्र एवं चान्द्र व्याकरण का स्त्रीत्व विमर्श. 3. जैनेन्द्र एवं शाक्टायन व्याकरण का स्त्रीत्व विमर्श. 4. सरस्वतीकाण्ठाभरण, सिद्धहैमशब्दानुशासन, मुग्धबोध एवं सारस्वतव्याकरण का स्त्रीत्व विमर्श. 5. संस्कृत व्याकरण सम्प्रदायों में स्त्रीत्व सम्बन्धी अवधारणाओं की समीक्षा । उपसंहार। सन्दर्भ-ग्रन्थसूची।

18. मिश्र, मोहित कुमार
संस्कृत तथा फ़ारसी भाषा की व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन
निर्देशक : प्रो. बलराम शुक्ल
Th26972

सारांश

संस्कृत तथा फ़ारसी की व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन' विषयक इस शोध के सन्दर्भ में योजनानुसार सात अध्यायों की परिकल्पना पूर्व में प्रस्तुत की गई है। जिसमें स्पष्टतः बताया गया है कि भाषिक एवं व्याकरणिक दृष्टि से अतिप्राचीन और समृद्ध संस्कृत तथा फ़ारसी भारोपीय भाषा-परिवार से सम्बद्ध भारत-ईरानीशाखा की सजातीय भाषाएँ हैं। जिनमें ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक रूपों में बहुत स्तरों पर निकटता है और ये सारी निकटताएँ भाषिक निकटता के माध्यम से अभिव्यंजित होती हैं। भाषिक समीपता को मात्र शब्दों के स्तर पर न देख करके व्याकरणगत स्तर पर व्याकरणिक कोटियों के माध्यम से देखा गया है। जो दोनों भाषाओं में अन्तर्निहित एकता के अन्य तत्वों को प्रकट करने में और अधिक समर्थ हो पायी। संस्कृत में व्याकरणिक कोटियाँ भाषा के आरम्भिक काल से

लेकर अभी भी अनवरत रूप में विद्यमान हैं जबकि फ़ारसी में कुछ कोटियाँ तो उसकी पूर्वज भाषाओं की विरासत के रूप में संस्कृतवत् हैं तथा कुछ में विकार आ गया है और कुछ पूर्णतः लुप्त हो गई हैं। दोनों भाषाओं में अल्पाधिक रूप में कोटियों के प्राप्त होने से ही परस्पर अध्ययन सम्भव हो सका। अरबी प्रभाव से फ़ारसी भाषा में लिपि एवं ध्वनिगत उच्चारण-भेद होने से संस्कृत की व्याकरणिक कोटियों के नामों से प्रायः भेद भी मिलता है। संस्कृत में ये कोटियाँ (कैटेगरीज़) इतनी सूक्ष्म-समृद्ध और व्यवस्थित हैं जितनी कि संसार की अन्य किसी भी भाषा में प्राप्त नहीं होतीं। इसी को ध्यान में रखते हुए इस शोध में संस्कृत के माध्यम से फ़ारसी भाषा के शब्दों एवं शब्दगत संरचना रूपी व्याकरणिक कोटियों का व्याकृति-विश्लेषण करने का प्रयास किया गया। व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से फ़ारसी के पद एवं वाक्य संस्कृत से नैकट्य रखते हैं, संस्कृत मूल भाषा से सम्बद्ध-फ़ारसी ने भी अपने से प्राचीन ईरानी भाषाओं अवेस्ता, प्राचीन, मध्यकालीन फ़ारसी-पहलवी आदि से विरासत पायी है सम्भवतः इसी कारण यह निकटता दिखाई देती है।

विषय सूची

1. संस्कृत तथा फ़ारसी के सम्बन्धों की पूर्वपीठिका. 2. संस्कृत तथा फ़ारसी की व्याकरणिक कोटियाँ. 3. संस्कृत तथा फ़ारसी के आख्यात पदों की तुलना. 4. संस्कृत तथा फ़ारसी के नामपदों की तुलना. 5. संस्कृत तथा फ़ारसी में कृत तथा तद्धितों की तुलना. 6. संस्कृत तथा फ़ारसी की समासगत तुलना. 7. संस्कृत तथा फ़ारसी के उपसर्गों की तुलना । उपसंहार। सन्दर्भग्रन्थ - सूची।

19. मेघवाल, रामचन्द्र

मीमांसादर्शन में बलाबल - अधिकरण का समीक्षात्मक अध्ययन : वाक्यार्थ - विश्लेषण के सन्दर्भ में

निर्देशक : प्रो. दिलीप कुमार झा

Th27153

सारांश

वेदाध्ययन के अनन्तर धर्म तथा अधर्म रूप वेदार्थ का निर्णय करने के लिए धर्माधर्मबोधक मीमांसाशास्त्र का अध्ययन अत्यन्त अपेक्षित है । कारण यह है कि जिसने व्याकरण, काव्य, कोषादि का अध्ययन किया है उसके द्वारा वेद का अध्ययन किये जाने पर सन्दिग्ध वेदार्थ - ज्ञान ही होता है संशय निराकरण पूर्वक निर्णय मीमांसाशास्त्र के द्वारा ही होता है । मीमांसाशास्त्र के सूत्रों का यथासम्भव लोकप्रसिद्ध अर्थ ग्रहण किया जाता है, सामान्यतया अध्याहार आदि एवं परिभाषा की आवश्यकता नहीं होती है । परन्तु यदि वेद वाक्य और सूत्रों में विरोध होता है तो सूत्रों में अध्याहार आदि से भी व्याख्यान किया जाता है। इस प्रकार वेदार्थ धर्म तथा अधर्म का निर्णय के लिए मीमांसाशास्त्र का अध्ययन अपेक्षित होने से इस शास्त्र का निमार्ण अत्यन्त आवश्यक हो जाता है । मीमांसाशास्त्र के बिना धर्म व अधर्म के विषय में सम्यग् ज्ञान नहीं हो सकता है । क्योंकि धर्म तथा अधर्म में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थपत्ति और अनुपलब्धि प्रमाण नही है । इन्द्रय और विषय के निर्दुष्ट सम्बन्ध से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण होता है। यह धर्म और अधर्म में प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्यक्ष विद्यमान वस्तु का प्रकाशक होता है। शाबरभाष्य ने जिस आक्षेप - समाधान शैली के द्वारा विषय को स्पष्ट किया है, उसी शैली को आधार

बनाकर विषय प्रस्तुत किया है। जिसका लाभ यह होगा कि विषयबोध के साथ - साथ मीमांन्यान्याय की तर्क शैली का प्रायोगिक स्वरूप का भी ज्ञान होगा । बलाबल अधिकरण से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की व्याख्या अभी भी अपेक्षित है, उन ग्रन्थो का प्रकृत शोधकार्य में समावेश विषय की अत्यधिक गूढ़ता व विस्ताराधिक्य के कारण नहीं हो पाया। परन्तु मीमांसाशास्त्र के कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थ जैसे - मीमांसाकौस्तुभ, शास्त्रदीपिका को मूलरूप से सम्बन्धित विषय को प्रस्तुत किया गया है। इन ग्रन्थों पर अभी भी विश्लेषणात्मक अध्ययन की आवश्यकता है । जिससे बलाबल सिद्धान्त का ओर व्यापक ज्ञान हो सके । मीमांसाशास्त्र का यह प्रकरण शास्त्रसम्बन्धित ज्ञानवर्धन तथा वेदादि शास्त्रों के वाक्यार्थ बोध सही निर्णय पर पहुँचने के लिये अत्यन्त सहायक एवं उपयोगी है ।

विषय सूची

1. मीमांसाशास्त्र व अन्यशास्त्र. 2. श्रुतिप्रमाण - मीमांसा. 3. लिङ्गप्रमाण मीमांसा. 4. वाक्यप्रमाण मीमांसा. 5. प्रकरणप्रमाण - मीमांसा. 6. स्थानप्रमाण - मीमांसा. 7. समाख्याप्रमाण-मीमांसा। उपसंहार। परिशिष्टम् (बाधाबाधप्रकरणम्)। सन्दर्भग्रन्थ-सूची।

20. यादव (प्रीति)

जैनाचार्यविद्यानन्दप्रणीत 'अष्टसहस्त्री' में जैनेतर दर्शनों का प्रत्याख्यान : तत्वमीमांसा के विशेष परिप्रेक्ष्य में।

निर्देशक : डॉ. अवधेश प्रतापसिंह

Th26969

सारांश

आचार्य विद्यानंदप्रणीत अष्टसहस्री सभी दर्शनों के ज्ञान-मीमांसीय, आचार-मीमांसीय और तत्त्व-मीमांसीय पक्षों की समीक्षा कर स्याद्वाद शैली में उसकी पुनर्स्थापना करता है। प्रस्तुत शोध कार्य उन सभी दार्शनिक पक्षों के अंश तत्त्वमीमांसा को केंद्र में रखकर किया गया है। इसमें आचार्य विद्यानंद द्वारा स्याद्वाद के निकष पर परीक्षित प्रतिपक्षी के दार्शनिक सिद्धांतों की समपरीक्षा की गई है। शोधप्रबंध को चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। `तत्वविवेचन` नामक प्रथम अध्याय के अंतर्गत भारतीय दर्शनों में प्राप्त तत्त्व की परिभाषा का विवेचन तथा तत्त्वसिद्धि विषयक विभिन्न दर्शनों की मान्यताओं का विद्यानंदकृत खंडन प्रस्तुत कर उसकी समीक्षा की गई है। द्वितीय अध्याय `आत्मतत्त्व` के अंतर्गत चार्वाक, वेदांत, योग, मीमांसा एवं बौद्ध दार्शनिकों के आत्मविषयक मत का विद्यानंदकृत खंडन तथा जैन दर्शन में जीवस्वरूप एवं तत्सिद्धि को दर्शाया गया है। तृतीय अध्याय `सृष्टितत्त्व` में दर्शनाभिमत सृष्टिप्रक्रिया को दर्शाते हुए चार्वाक, सांख्य सम्मत संसार एवं तत्कारणों का तथा न्याय-वैशेषिक सम्मत ईश्वरसृष्टि -कर्तृत्व का खंडन किया गया है। चतुर्थ अध्याय `मोक्षतत्त्व` के अंतर्गत चार्वाक, सांख्य, न्याय, वेदांत तथा बौद्ध सम्मत मोक्ष की अवधारणा एवं तत्कारणों का आचार्य विद्यानंदकृत खंडन प्रस्तुत है तथा अनेकान्तिक स्याद्वाद द्वारा ज्ञान से मोक्षसिद्धि की प्रक्रिया दर्शायी गई है ।

विषय सूची

1. तत्व विवेचन. 2. आत्म-तत्व. 3. सृष्टि-तत्व. 4. मोक्ष-तत्व। उपसंहार। सन्दर्भ-ग्रन्थसूची।

21. राजेश कुमार
ऋग्वेदीय अश्विनों मन्त्रों का समीक्षात्मक अध्ययन (सायण भाष्य के विशेष सन्दर्भ में)।
निर्देशिका : डॉ. करूणा आर्या
Th27194

सारांश

शोध-प्रबन्ध ऋग्वेदीय अश्विनौ मन्त्रों का समीक्षात्मक अध्ययन (सायण भाष्य के विशेष सन्दर्भ में) नामक शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है जो कि पॉच अध्यायों में निबद्ध है । प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध का प्रथम बध्याय 'वैदिक देवताओं' में अश्विनौ देव का स्थान' नामक शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है, जिसमें वैदिक देवता को प्रतिपादित करते हुए बृहद्देवता में वर्णित किया गया है कि - जो ऋषि, छन्द तथा देवता के विनियोग सम्बन्ध को ज्ञात किए बिना अध्यापन करता है वह पाप का भागी बन जाता है सायणचार्य भी ऋग्वेद भाष्य - भूमिका के प्रारम्भ में उल्लेख करते है कि -

'ऋषिच्छन्दोदैवतानि ब्राह्मणार्थ स्वराद्यपि।
अविदित्वा प्रयुञ्जानों मन्त्रकण्टक उच्यते।।

ऋक्सर्वानुक्रमणी के कथनानुसार - 'या तेनोच्यते सा देवता' अर्थत् मन्त्र में जिस देवता का कथन या वर्णन प्राप्त होता है उसे मन्त्र का देवता कहा जाता है ऐसा वर्णित किया गया है । रामायण, महाभारत और पुराणों में पूर्ववर्ती समस्त परम्पराओं का अनुगमन किया गया है किन्तु इसके साथ ही अनेक आख्यायिकाओं एवं कथाओं के माध्यम से अश्विनौ के जीवन के विभिन्न पक्षों को उभारते हुए समस्त देवताओं के मध्य उनकी प्रतिष्ठा की गयी है । इस प्रकार ऋग्वेद से लेकर पुराणकाल तक अश्विनौ का महत्व देवताओं के मध्य कुछ उच्चावच्च के साथ निरन्तर प्रतिष्ठित प्रतीत होता है । अतः प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के पॉच अध्यायों में अश्विनौ देवता के स्वरूप की समीक्षा करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में अश्विनौ देवता के स्वरूप को विविध भाष्यकारों एवं वैदिक आख्यानों के माध्यम से समीक्षा करने का प्रयास किया गया है । शोधार्थी का विश्वास है कि अश्विनौ देवताओं से सम्बन्धित अन्य शोध कार्य करने हेतु शोधार्थियों के लिये भी यह शोधकार्य उपयोगी सिद्ध होगा ।

विषय सूची

1. वैदिक देवताओं में अश्विनौ देव का स्थान. 2. ऋग्वैदिक अश्विनौ : एक परिचय. 3. सायण के अश्विनौ विषयक चिन्तन की समीक्षा. 4. आचार्य सायण एवं स्वामी दयानन्द के परिप्रेक्ष्य में ऋग्वेदीय अश्विनौ की समीक्षा . 5. ऋग्वेद से इतर ग्रन्थों में अश्विनौ देव। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

22. ऋतेशा
हरिजीवनमिश्रकृत प्रहसनों का सम्पादन एवं समालोचना।
निर्देशक : प्रो. पी. के. पण्डा
Th26985

सारांश

हरिजीवनमिश्रकृत प्रहसनों का संपादन एवं समालोचन प्रहसन दशरूपकों में अन्यतम विधा है। शोध कार्य के लिये चयनित छः महत्वपूर्ण प्रहसन-अद्भुततरङ्ग, प्रासङ्गिक, पलाण्डुमण्डन, सहृदयानन्द, विबुधमोहन एवं घृतकुल्यावली हैं। विषयों की विविधता और समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों के पाखण्ड और दोहरे आचरण के उद्घाटन के कारण ये प्रहसन पठनीय हैं।मेरे शोधकार्य में इन नाट्यकृतियों का उचित पाठग्रहण करके समीक्षात्मक संपादन एवं समालोचन किया जायेगा।जिससे पुस्तकालयों में उपलब्ध चिरप्रसुप्त पाण्डुलिपियां प्रकाशित होकर सहृदयों की दृष्टि का विषय बनेंगी ।जिससे न केवल संस्कृत साहित्य के विद्यार्थी अपितु नाटक के क्षेत्र में शोधार्थी पाठक एवं जिज्ञासु जनों को एक दिशा प्राप्त होगी।

विषय सूची

1. पण्डित हरिजीवन मिश्र का परिचय. 2. 'घृतकुल्याविलास' प्रहसन का सम्पादन एवं समालोचन. 3. 'पलाण्डुमण्डन' प्रहसन का सम्पादन एवं समालोचना. 4. 'प्रासंगिक' प्रहसन का सम्पादन एवं समालोचन. 5. 'विबुधमोहन' प्रहसन का सम्पादन एवं समालोचन. 6. 'सहृदयानन्द' प्रहसन का सम्पादन एवं समालोचन. 7. 'अद्भुततरंग' प्रहसन का सम्पादन एवं समालोचन । उपसंहार। परिशिष्ट । सन्दर्भग्रन्थ - सूची।

23. रोहित कुमार

महाभाष्य की रत्नप्रकाश टीका का समीक्षात्मक अध्ययन : अष्टाध्यायी तृतीय अध्याय प्रथम पाद के परिप्रेक्ष्य में।

निर्देशक : प्रो. ओमनाथ बिमली

Th27154

सारांश

भारतीय जनमानस आज भी संस्कृत भाषा को उसी दृष्टि से देखती है, जि दृष्टि से पहले देखती थी । आज भी 'वन्दे संस्कृतमातरम्' का उद्घोष सुनने को मिलता है । यह भाषा प्राचीन समृद्ध और प्रौढ़ है। वैदिककाल से लेकर अभी तक की यात्रा संस्कृत भाषा ने पूरी की है । व्याकरण के बिना भाषाशुद्धि की परिकल्पना भी नही की जा सकती है । व्याकरण के नियम के अभाव में मनमाने ढंग से लेखनकार्य एवं अर्थनिरूपण के कारण अर्थ का अनर्थ होने लगता है । भाष के लिए नियामक होना आवश्यक है । कालक्रम से भाषा में अशुद्धियॉं प्रविष्ट होने लगती हैं, जिसके अपाकरण के लिए व्याकरण की प्रधानता होती है । भाषा की शुद्धताव्याकरण शास्त्र का मूल लक्ष्य है । शास्त्रों के द्वारा नियमन किया जाता है । अन्यथा अशुद्ध शब्दों के द्वारा भी भावावगमन और एवे अर्थ बोध तो होता ही है । 'महाभाष्य की रत्न प्रकाश टीका का समीक्षात्मक अध्ययन' विषय को लेकर सम्पूर्ण शोधकार्य किया गया है । सीमांकन की दृष्टि से 'अष्टाध्यायी तृतीय अध्याय प्रथम पाद के परिप्रेक्ष्य में' शोधक्षेत्र को सीमित किया गया है । तृतीय अध्याय के प्रथम पाद में कुल 150 सूत्र दिये गये है । किन्तु इन सभी सूत्रों पर महाभाष्य नहीं है, इनमें से केवल 77 सूत्रों पर ही महाभाष्य रत्नप्रकाश दृग्गोचर हो रहा है । इस पाद का प्रथम सूत्र 'प्रत्ययः' है एवं अन्तिम सूत्र 'आशिषि च' है । महाभाष्यकार को जहॉं व्याख्यान उचित प्रतीत हुआ, वहॉं

उन्होने अपना व्याख्यान दिया है। सम्पूर्ण सूत्रों पर महाभाष्य हो, ही यह कोई नियम नहीं है । भाष्य अथवा टीका का अभिप्राय ग्रन्थ के आश्य को सुगमतापूर्वक उपस्थापित करना होता है । यदि टीका एवं भाष्य और दुरूह हो जाए तो पुनः वह टीका का भूषण न होकर दूषण हो जाता है । लोकप्रसिद्ध संज्ञा शब्द की करणव्युत्पत्तिन्याय से कर्मव्युत्पन्नत्व की कल्पना करके उसका निराकरण करना उचित नहीं है । संज्ञा को भाव साधना मानने में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है । शिवरामेन्द्र सरस्वती 'संज्ञायते अनेनइति संज्ञा कहते हुए करण साधना मानते है । शोध - प्रबन्ध में विस्तार से समीक्षात्मक अनुशीलन करते हुए रत्नप्रकाश टीका के आलोक में अष्टाध्यायी तृतीय अध्याय के प्रथम पाद के सूत्रभाष्यों में प्रतिपादित सभी विषयों को स्पष्ट किया गया है ।

विषय सूची

1. तृतीय अध्याय के प्रथम आह्किगत सूत्रों का विमर्श. 2. तृतीय अध्याय के द्वितीय आह्किगत सूत्रों का विमर्श. 3. तृतीय अध्याय के तृतीय आह्किगत सूत्रों का विमर्श. 4. तृतीय अध्याय के चतुर्थ आह्किगत सूत्रों का विमर्श. 5. तृतीय अध्याय के पंचम आह्किगत सूत्रों का विमर्श. 6. तृतीय अध्याय के षष्ठ आह्किगत सूत्रों का विमर्श। उपसंहार। परिशिष्ट : अष्टाध्यायी तृतीय अध्याय प्रथम पाद रत्नप्रकाशटीकास्थ सूत्रसूची । सन्दर्भ ग्रन्थसूची।

24. विपिन कुमार

संस्कृत के प्रमुख प्रतीकात्मक रूपकों में असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि का समीक्षात्मक अध्ययन।

निर्देशक : प्रो. पी. के. पण्डा

Th26973

सारांश

प्रस्तुत शोध में प्रथम अध्याय में प्रबोधचंद्रोदय संकल्पसूर्योदय चैतन्यचंद्रोदय विद्यापरिणयन जीवानंदन अमृतोदय यतिराजविजय रूपकों में समुपलब्ध रस और भाव का प्रतिपादन किया गया है उक्त रूपकों में श्रृंगार रस की वस्तुस्थिति का विवेचन करने का पूर्ण प्रयास किया गया है वस्तुतः प्रतीकात्मक रूपों में दार्शनिक वृत्त होने से रस भाव की स्थिति दुर्गम प्रतीत होती है अपितु नाट्य विधा होने से इनकी स्थिति इस प्रकार है श्रृंगार रस हास्य रस करुण रस रौद्र रस वीर रस भयानक रस बीभत्स रस अद्‌भुत रस शांत रसों का निदर्शन कराया गया है प्रतीकात्मक रूपकों में काम और रति के संवादों में उनके भावनाओं को विवेचित करने का प्रयास किया गया है प्रबोधचंद्रोदय रूपक में विवेक प्रधान पात्र है जो कि सुमार्ग का अनुगमन करता है मोह प्रति नायक पात्र है विवेक और मोह की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा और अधिपत्य को लेकर विविध रत्यादि भावों की परिणति होती है भाव ध्वनि का विवेचन प्रत्येक रूपों के अनुसार किया गया है श्रद्धा से भक्ति की प्रबलता होती है रूपकों में भाव को वाच्य रूप में प्रस्तुत किया गया जिसका मानवीयकरण के रूप में संवाद प्रस्तुत हुआ है अतः इनके पात्रों में जो संवाद उपलब्ध होते हैं उनमें भावध्वनि अभिव्यक्त होती है। • द्वितीय अध्याय में रसाभास भावाभास ध्वनि किस प्रकार परिलक्षित होती है इसी विषय का विवेचन किया गया है। • तृतीय अध्याय इसमें भावोदय और भावशांति ध्वनि का विवेचन किया गया है परामर्श और अक्षता के वार्तालाप में परामर्श अन्य नायिका की बात करता है जिससे भावोदय ध्वनि की अभिव्यंजना होती है इसी का विवेचन प्रस्तुत है। • चतुर्थ अध्याय भावसंधि और भावशबलत्व ध्वनि का प्रतीकात्मक रूपकों में सन्निनिवेश किस प्रकार है उसे व्याख्या करने का प्रयास किया गया है वस्तुतः भावसंधि ध्वनि में दो भावों के संयोग से होती है तथा भावशबलत्व ध्वनि में दो से अधिक भावों का सन्निनिवेश देखा जाता है इन प्रतीकात्मक रूपकों में उपलब्ध दोनों ध्वनियों की स्थिति को विवेचित किया गया है। • पंचम अध्याय में रूपकों के प्रायोगिक पक्षी पर विचार किया गया है वस्तुतः प्रतीकात्मकता का नाट्य मंच पर प्रयोग ही

विलक्षण है और कवि प्रतिभा का अद्‌भुत वैशिष्ट्य है अतः प्रतीकात्मक रूपों में प्रयुक्त विविध दार्शनिक आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक प्रायोगिक पक्षों पर विचार प्रस्तुत किया गया है इन पक्षों के माध्यम से मानव मस्तिष्क के अंतः पक्षों के उद्‌गार को चराचर जगत की भांति प्रतिपादित किया गया है भावों का रंग मंचीय प्रयोग प्रस्तुत शोध में विवेचन किया गया है ।

विषय सूची

1. समलोच्य रूपकों में रस, भावरूप असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि. 2. समालोच्य रूपकों में रसाभासरूप असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि. 3. समालोच्य रूपकों में भावोदय, भावशान्तिरूप असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि. 4. समालोच्य रूपकों में भावसन्धि, भावशबलत्वरूप असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि. 5. प्रतीकात्मक रूपकों का प्रायोगिक पक्ष एवं असंलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची। संस्कृत सुभाषित ।

25. श्रीवास्तव (अंकिता)

प्रमुख प्रतीकात्मक नाटकों में अध्यात्म एवं मनोविज्ञान।

निर्देशक : डॉ. सतीश कुमार मिश्र

Th26961

सारांश

संस्कृत वाङ्मय में प्राचीन काल से ही आत्मावबोधन हेतु स्वीकृत विविध प्रयास संकलित हैं । वेद, ब्राहमण, आरण्यक, उपनिषद्, धर्मशास्त्र एवं साहित्य भी अध्यात्म विद्‌या के महत्व को निरन्तर उद्‌घाटित करते रहे हैं । भारतीय दर्शन परम्परा भी आत्मज्ञान को विविध प्रकार से व्याख्यायित करती रही है। आत्मज्ञान की इसी जटिल प्रक्रिया को सरलतम एवं मनोरञ्जक ढंग से प्रस्तुत करने हेतु कालान्तर में प्रतीकात्मक नाटकों का उद्‌भव एवं विकास हुआ । इन नाटकों में विविध दर्शनों का आश्रयण करके आत्मज्ञान के भिन्न-भिन्न मार्ग प्रतिपादित किये गये है जिसकी यात्रा मनोवैज्ञानिक धरातल पर सम्पन्न होती है।अनुसन्धान हेतु प्रतीकात्मक नाटकों में निहित भारतीय दर्शन परम्परा के अनुसार अध्यात्म की वस्तुस्थिति का अध्ययन एवं आत्मज्ञान की प्रक्रिया में सकारात्मक मनोवैज्ञानिक पक्षों का स्पष्टतः उद्‌घाटन करना मूल विषय है। इन नाटकों में विविध दार्शनिक मार्गों द्‌वारा आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया गया है । पाश्चात्य जगत की अन्तःकरण की अवधारणा से पूर्णतः भिन्न भारतीय मानस शास्त्र के सूक्ष्मतम निष्कर्षों को प्राप्त करना तथा उसके महत्व एवं प्रभावों की व्याख्या ही प्रस्तुत शोधकार्य का क्षेत्र है । ज्ञान की प्रक्रिया में विषयी (subject) एवं विषय (object) की स्थिति महत्वपूर्ण होती है, इन्हीं के आधार पर नाटकों का विश्लेषण किया गया है। प्रतीकात्मक नाटकों के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न दर्शनों से संबन्धित प्रमुख नाटकों का ग्रहण किया गया है - अद्‌वैत वेदान्त से संबन्धित प्रबोधचन्द्रोदय एवं स्वानुभूति, विशिष्टाद्‌वैत से संकल्पसूर्योदय , न्यायदर्शन से अमृतोदय, श्वेताम्बर जैन संप्रदाय से मोहराजपराजय, दिगम्बर जैन संप्रदाय से ज्ञानसूर्योदय, भक्ति संप्रदाय से चैतन्यचन्द्रोदय, श्रीमद्‌भागवत से पुरञ्जनचरित, आयुर्वेद से जीवानन्दन एवं शिवभक्ति से विद्‌यापरिणयन। मन के स्वरूप और उसके नाना

नाम एवं रूपों के सम्बन्ध में उसका भारत के अन्य प्रायः सभी दर्शनों – न्याय, सांख्य, चार्वाक, जैमिनीय, आर्हत, बौद्ध, वैशेषिक एवं पाञ्चरात्र आदि से मतभेद है । अतएव इसी प्रकार के भेदों का नाटकों के परिप्रेक्ष्य में निरूपण भी प्रस्तुत अनुसन्धान का विषय क्षेत्र है ।

विषय सूची

1. अध्यात्म एवं सकारात्मक मनोविज्ञान : परिभाषा तथा स्वरूप. 2. प्रमुख प्रतीकात्मक नाटकों में आध्यात्मिक चेतना. 3. प्रतीकात्मक नाटकों में सकारात्मक मनोविज्ञान. 4. आध्यात्मिक पथ एवं उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव. 5. प्रतीकात्मक नाटकों में तुलनीय आध्यात्मिक पक्ष । उपसंहार। परिशिष्ट । सन्दर्भग्रन्थ सूची।

26. श्रुति

मौनिश्रीकृष्णभट्टकृत विभक्त्यर्थनिर्णय का सम्पादन व अनुशीलन।

निर्देशक : डॉ. ब्रह्मप्रकाश

Th27157

सारांश

पाणिनी व्याकरण की समृद्धता पाणिनि, कात्यायन एवं पतंजलि की आर्ष प्रज्ञा का परिणाम है । व्याकरण परम्परा को सम्पूर्णता प्रदान करने के कारण ही उक्त तीनों व्यक्तित्वों के कारण ही पाणिनी व्याकरण को 'त्रिमुनि व्याकरणम्' कहा जाता है । पाणिनि व्याकरण को आधार बनाकर ही परवर्ती आचार्यो ने उत्तरोत्तर भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । विश्लेषणविषयक विपुलता एवं विशदता के कारण परवर्ती वैयाकरणों को अधिक प्रमाणिक मानना उचित है । व्याकरण की सुदीर्घ परम्परा को समृद्ध करने वाले आचार्यो में भर्तृहरि, कैयट, जिनेन्द्रबुद्धि, हरदत्त मिश्र आदि का नाम आदर से लिया जाता है, इनकी कृतियों में व्याकरण का एक नूतन दार्शनिक पक्ष उपस्थित हुआ है । इसी दार्शनिक विवेचना को कौण्डभट्ट, भट्टोजिदीक्षित एवं नागेशभट्ट नव्य-वैयाकरण आचार्यो ने समग्रता प्रदान की। इसी शृंखला में आचार्य मौनिश्रीकृष्णभट्ट का विभक्ति-चिन्तन नव्य-व्याकरण को और अधिक समृद्ध करता है। अष्टाध्यायी में पाणिनि में 'अनभिहिते' सूत्र के अधिकार में एक स्थान पर ही कारक विभक्ति एवं उपपद विभक्तियों का विधान किया है। मौनिकृष्णभट्ट पूर्ववर्ती आचार्यो भट्टोजिदीक्षित एवं नागेशभट्ट द्वारा विहित विभक्ति-विषयक चिन्तन को आधार बनाकर विभक्त्यर्थविषयक विवेचना करते है। ये सर्वत्र विभक्तियों के अर्थसंबन्धी नवीन एवं सटीक अर्थ की स्थपना का प्रयास करते है । प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध में विभक्ति - विषयक केवल उन्हीं सूत्रों एवं वार्तिको पर विचार किया गया है, जिन पर नागेशभट्ट एवं मौनिश्रीकृष्णभट्ट में मतवैभिन्न्य दिखलाई देता है। विभक्त्यर्थनिर्णय में मौनिश्रीकृष्णभट्ट ने प्रायः सर्वत्र नागेशभट्ट के मत का खण्डन किया है। नागेशभट्ट एवं मौनिकृष्णभट्ट का विभक्त्यर्थ संबंधी जो मतवैभिन्न्य है, वह विभक्तियों के अर्थ के स्वरूप को उद्घाटित करने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विभक्त्यर्थविवेचन पर शोध करने की इच्छा रखने वालों के लिए यह क्षेत्र व्यापक अवसर प्रदान करता है।

विषय सूची

1. विषय प्रवेश. 2. प्रथमा विभक्ति का सम्पादन एवं अनुशीलन. 3. द्वितीया विभक्ति का सम्पादन एवं अनुशीलन. 4. तृतीया विभक्ति का सम्पादन एवं अनुशीलन. 5. चतुर्थी विभक्ति का सम्पादन एवं

अनुशीलन. 6. पंचमी विभक्ति का सम्पादन एवं अनुशीलन. 7. षष्ठी विभक्ति का सम्पादन एवं अनुशीलन. 8. सप्तमी विभक्ति का सम्पादन एवं अनुशीलन । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

27. शर्मा (स्वस्ति)
वेदान्तसञ्ज्ञाप्रकरण : समालोचनात्मक सम्पादन एवं समीक्षात्मक अध्ययन।
निर्देशिका : प्रो. मीरा द्विवेदी
Th27155

सारांश

प्रस्तुत शोध में 'वेदान्तसंज्ञाप्रकरण' नामक ग्रन्थ को सम्पादित कर इसकी पाण्डुलिपि-शास्त्र-सम्मत समालोचना भी प्रस्तुत की गई है। इस ग्रन्थ के सम्पादन हेतु बारह पाण्डुलिपियों का संकलन कर के अध्ययन किया गया तदन्तर सभी का परस्पर मिलान किया गया । शोध के समालोचनात्मक रूप से सम्पादित ग्रन्थ 'वेदान्तसंज्ञाप्रकरण' में वेदान्त दर्शन की 144 परिभाषिक संज्ञाओं का गणन व विवेचन है। इस ग्रन्थ में वेदान्त की जटिल संज्ञाओं को समझने हेतु सरल बनाने का प्रयास किया गया है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से वेदान्त की जटिल संज्ञाओं के अवगमन में सुविधा होगी । समय की अल्पता के कारण मात्र बारह पाण्डुलिपियों का ही संकलन किया गया। उपलब्ध पाण्डुलिपियों की संख्या से ज्ञात होता है कि अपने कालखण्ड में यह ग्रन्थ अवश्य ही प्रचलित रहा होगा । सम्पूर्ण भारत में इसका पठन-पाठन प्रचलित रहा होगा, परन्तु कालक्रम में इसके प्रचार-प्रसार के स्तर में कमी आ गई होगी। जिसके कई कारण हो सकते हैं। उन कारणों के विषय में भी विचार किये जाने की अपेक्षा है । भारत का प्राचीन साहित्य विपुल होने के साथ-साथ बहुविध भी है। इन्हीं में भारतीय ज्ञान आवृत्त है, जो हमारी धरोहर भी है। इसलिए पाण्डुलिपियों की सुरक्षा कर उनका सम्पादन करना शोधार्थियों का कर्तव्य है। इन पाण्डुलिपियों में निहित ज्ञान-सम्पदा को अनावृत कर उसे समस्त जगत के सामने लाना ही शोधार्थियों ध्यये है। अतः इस कार्य को और अधिक विस्तार से तथा गहनता से विचार किया जाना आवश्यक है।

विषय सूची

1. समीक्ष्य पाण्डुलिपियों का विवरण तथा सम्पादन - प्रविधि. 2. वेदान्तसञ्ज्ञाप्रकरण का समालोचनात्मक सम्पादन. 3. वेदान्तसञ्ज्ञाप्रकरण की समालोचना एवं पाठसमीक्षा. 4.वेदान्तसञ्ज्ञाप्रकरणस्थ सञ्ज्ञाओं का विश्लेषण। उपसंहार। परिशिष्ट । सन्दर्भग्रन्थ - सूची।

28. शुक्ला (बन्दना)
वैदिक आख्यानों का साहित्यशास्त्रीय अध्ययन।
निर्देशक : प्रो. रंजन कुमार त्रिपाठी
Th26983

सारांश

सर्वप्रथम इस शोध प्रबंध में भूमिका का विन्यसन हुआ है। वेद की महिमा का वर्णन करते हुए उसके व्युत्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है। सायण आचार्य के मत में इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयो: अलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद: इस परिभाषा के द्वारा वेद की वेदता का ख्यापन किया गया है। जिसके कारण इस ग्रंथ में शोध करने का महत्व अत्यंत बढ़ जाता है। तदुपरांत वेद का विभाजन के बारे में वर्णन किया गया है। पुनः वेद के वर्णय विषयों में वैदिक

आख्यानों का अध्ययन किया गया है। जिसमें आख्यानों से तात्पर्य, आख्यानों का उद्भव और विकास पर प्रकाश डाला गया है। इन आख्यानों का साहित्य शास्त्रीय अध्ययन पांच अध्यायों के माध्यम से किया गया है। प्रथम अध्याय में आख्यान का संस्कृत साहित्य में प्रचलित प्रस्थान के प्रकाश में अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन उन लोगों के लिए उपकृत तथा उत्तर होगा जिनके मत में वेद शब्द और अर्थ का संयोजन मात्र परिलक्षित होता है। इस अध्याय में उन सभी विषयों का अन्वेषण प्रस्तुत किया गया है, जो वेद में प्राप्त होते हैं। इसमें प्रस्थान अनुसार छः विभाग करके पुनः संप्रदायों का उपविभाग करके आख्यान में आए हुए रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य का विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम रस प्रस्थान का विवेचन हुआ है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है। पुरुरवा उर्वशी आख्यान- इसमें विप्रलंभ शृंगार का सुंदर समावेश किया गया है। इस आख्यान में उर्वशी पुरुरवा को छोड़कर चली जा रही है। जिससे संतप्त होकर पुरुरवा अत्यंत व्याकुल है, और मानने का सतत प्रयास करता है। उर्वशी पुनः लौट आए, इसलिए वह कहता है कि हे प्रिये अपने आप को अनुरागपूर्ण करो, क्षण भर के लिए रुक जाओ, यदि हमारी पूरी बातें नहीं सुनती तो बाद में पछताओगी। तुम्हारे बिना मेरी ऐसी अवस्था हो गई है कि मैं तुणीर से बाण नहीं निकाल पा रहा हूँ। इस कारण शत्रुओं से एक गाय भी छीनने में असमर्थ हूं। हमारा यह पुत्र तुम्हारे बिना कैसे रहेगा, क्या वह मुझे देखकर तुम्हे याद नहीं करेगा। एक दूसरे के प्रति आसक्त पति पत्नी को कौन अलग देखना चाहता है। हे उर्वशी तुम्हारे विरह में मैं आज गिर जाऊंगा, फिर कभी भी उठने में समर्थ नहीं होऊंगा। इस प्रकार आख्यान में वियोग जनित संताप को यथार्थरूप में चित्रित किया गया है, अतः यहां विप्रलंभ शृंगार का उत्तम चित्रण मिलता है यथा सुदेवोऽद्यप्रपतेदनावृत परावतं परमां गंतवा उ"। इंद्र वृत्त आख्यान- प्रकृत आख्यान में इंद्र के पराक्रम का वर्णन है, जैसे इंद्र के बल से धरती और आकाश पर निवास करने वाले लोग डर गए, और इंद्र ही विशाल सेना के नायक है। उन्होंने ही पृथ्वी और आकाश को दृढ़ किया, क्रोधित पर्वतों के पंख को काटा, वृत्त असुर को मारकर नदियों के जल को बहाया, बल नामक असुर द्वारा रोकी गई गायों को स्वतंत्र किया, युद्ध स्थल में शत्रुओं का विनाश किया इत्यादि अनेक उद्धरण इंद्र के पराक्रम के सूचक है। यहां पणि आलम्बन विभाव है। पणि के द्वारा अपने वीरता का प्रदर्शन का प्रदर्शन उद्दीपन विभाव है। इन्द्र के का वर्णन अनुभाव है। पणि का गर्वोक्ति पूर्ण वचन व्यभिचारी भाव है। अतः यहां वीर रस की छटा विद्यमान है। सरमा पंणि आख्यान में भी वीर रस अपने पराकोटि को छूता है, जहां सरमा इंद्र के सामर्थ्य का यशोगान करती है, वहीं पणि अपने शक्ति को व्यक्त करने में पीछे नहीं रहता है। दोनों का परस्पर संवाद वीर रस से सम्मिश्रित है।

विषय सूची

1. वैदिक आख्यान एवम् संस्कृत साहित्यशास्त्र के षड्प्रस्थान. 2. वैदिक आख्यानों में कथातत्व. 3. वैदिक आख्यानों में संवादात्मकता. 4. वैदिक आख्यानों में शब्दशक्ति विमर्श. 5. वैदिक आख्यानों में काव्य सौन्दर्य । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

29. सचिन

अम्बाकर्त्री टीका में ब्रह्ममस्वरूप निरूपण एवं शांकरदर्शन : एक समीक्षात्मक अध्ययन।

निर्देशक : प्रो. ओमनाथ बिमली

Th26975

सारांश

अनादि काल से चली आ रही भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड संस्कृत ही है, जो विभिन्न संस्कृतियों के पतन के उपरान्त भी कालजयी के रूप में सम्प्रति भी अध्ययन-अध्यापन द्वारा मार्ग प्रशस्त कर रही है। वैदिक एवं लौकिक संस्कृत के विशुद्ध ज्ञान हेतु ही नहीं अपितु सम्पूर्ण वाङ्मय के ज्ञान के लिए संस्कृत व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि सभी वेदांगों में प्रधान व्याकरण ही है। पतंजलि ने भी कहा है- षट्ष्वंगेषु प्रधानं व्याकरणम्। प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति।व्याकरण शास्त्र की प्रमुखता को देखते हुए शिक्षाकार कहते हैं कि- जिस प्रकार शरीर में मुख प्रमुख है, उसी प्रकार वेदांगों में व्याकरण की प्रमुखता है 'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'।संस्कृत व्याकरण का एक व्यापक क्षेत्र है और उसका अपना विशिष्ट महत्त्व है। जो व्यक्ति शब्द साधुत्व को जानकर उसका सम्यक्तया प्रयोग करता है तो महाभाष्यकार के शब्दों में वह व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ होता है- 'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुक् भवति'। `शब्द ही अद्वितीय ब्रह्म है` ऐसा प्रतिष्ठापित करने वाले आचार्य हैं भर्तृहरि । अपने ग्रन्थ की प्रथम कारिका में ही ब्रह्मस्वरूप और ब्रह्म का जगत् के रूप में अवभासित होने का कारण व विवर्त को निर्दिष्ट किया है।अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् । विवर्ततेऽर्थ भावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥भर्तृहरि के इस विवर्तवाद को ही पूज्यपाद श्री रघुनाथ शर्मा अम्बाकर्त्री टीका में प्रतिष्ठापित करते हैं और 'शब्दस्य परिणामोऽयम् इत्याम्नाय विदो विदुः' इस कारिका के व्याख्यान पर कहते हैं कि- "विवर्त एव शब्दब्रह्मवादिनां पक्षः अन्ये आम्नाय विदुः विद्वांसः शब्दस्य परिणामभूतमिदं जगदिति वदन्ति"। इसी कारिका के उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त एतद्विश्वं व्यवर्तत यहाँ पर "व्यवर्तत" इस शब्द की व्याख्या करते हुये "व्यजायत" लिखते हैं। इस प्रकार जहां भी भर्तृहरि के भाव सामान्य जनों तक नहीं पहुंच पाते वहां अम्बाकर्त्रीकार अपने शब्दों से उसे सरल एवं सुगम बना देते हैं।

विषय सूची

1. अवतरणिका. 2. ब्रह्ममस्वरूप - विमर्श. 3. ब्रह्मशक्तिस्वरूप - विमर्श. 4. जाति की महासत्ता के रूप में संकल्पना. 5. ब्रह्म की द्रव्यरूप में संकल्पना. 6. ब्रह्म प्राप्ति एवं मोक्षमीमांसा । उपसंहार। सन्दर्भग्रन्थ-सूची।

30. सतीश

कालिदास की नाट्यकृतियों में व्यभिचारिभाव : एक समालोचन।

निर्देशिका : प्रो. मीरा द्विवेदी

Th27156

सारांश

कालिदास संस्कृत साहित्य के समुज्ज्वल रत्न हैं। उनके विचार में मानवीय जीवन का उद्देश्य जरामरणरूप आवागमन से मुक्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति है । अतएव उन्होने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति 'अभिज्ञानशकुन्तल' में लौकिक प्रेयस् के ऊपर पारलौकिक श्रेयस् का शार्श्वत सन्देश विश्व के मानव समाज को दिया है। उन्होंने इन उत्कृष्ट आदर्शो की अभिव्यंजना अपनी रचना में की है । इनकी रचनाओं में रसनिरूपण अद्वितीय है । यह अपनी रचनाओं में किसी एक रस से बँधकर नही रहे है । प्रसंग, घटना, तथा चित्रण के अनुसार रस प्रवाह भी बदलता रहा है । ये प्रायः अङ्गीरस के रूप में श्रृंगार का चित्रण करते है तथा अंग रस के रूप में प्रसंगानुसार सभी रसों का ग्रहण करते है । अलंकार से श्लिष्ट रसवर्णन तथा भावाभिव्यक्ति इनकी रचना को सद्यः सम्प्रेष्य बना देती है । महाकवि के कविता के अंग - प्रत्यंग से जो रसस्रोतसिनी प्रवाहित होती है, उससे आज भी रसिक जन उसमें डूबकर आनन्दातिरेक का अनुभव करते है । महाकवि कालिदास के काव्यों में भावाभिव्यक्ति तथा वर्णन प्रकार में मंजुल - समन्वय मिलता है । मानव अथवा प्राणिमात्र के हृदय के सच्चे पारखी है । अतः मनुष्य के मनोभावों का जैसा सूक्ष्म एवं उदात्त वर्णन इनकी रचनाओं में मिलता है । वैसा ही मानवेतर प्राणियों, जैसे - मृग, हंस, मयूर, वृक्ष, लता आदि का भी मिलता है । इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति दुर्लभ है । इनकी तीनों ही नाट्यकृतियॉं, आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के नियमों में आबद्ध हैं । यहॉं शृङ्गारादि रसों का स्पष्टतः स्फुरण तो है ही साथ - साथ उनके प्रतिपादक भावों का भी सुन्दर अभिव्यक्तिकरण है । जो साधारण जनमानस को भी आनन्दातिरेक की प्राप्ति करता है । काव्य के द्विविध भेदों श्रव्य एवं दृश्य में द्वितीय भेद दृश्यकाव्य को ही प्रधान माना गया है । कविकुलगुरू के गरिमामय पद पर प्रतिष्ठित कालिदास, कवि और नाटककार उभयविध रूपों में अपने सरस्वती के वरदपुत्रत्व को प्रमाणित करते है । प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी आचार्य उनकी रससिद्ध - वाग्ङ्धुरी से विमुग्ध हैं और एक स्वर में उन्हें संस्कृतभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि की पदवी पर प्रतिष्ठित करते हैं। शोधकार्य से कालिदास की वाक्सुधा की रससिद्धता प्रमाणित है ही, साथ ही यह भी प्रमाणित हुआ है कि विविध स्फुटभावों की मनोहारी अभिव्यक्ति में भी कालिदास निश्चय ही अनुपम है । जैसे - विविध प्रकार के मोतियों का सुरूचिपूर्ण गुम्फन परमशोभा का सम्पादक होता है । वहीं एक - एक मोती का मनका भी मन का हरण करने में सक्षम होता है । उसी प्रकार विभावादि के समुदायभूत रस के अंकन में तो कालिदास की प्रतिभा पूर्वप्रमाणित ही थी, यह भी सिद्ध हो सका है कि मोती के मनके के समान व्यभिचारिभावों का रस भी हृद्य अंकन महाकवि कालिदास की लोकोत्तर प्रतिभा का ख्यापक है ।

विषय सूची

1. व्याभिचारिभावों का स्वरूप एवं विश्लेषण. 2. व्यभिचारिभावों एवं अन्य भावों का पारस्परिक सम्बन्ध. 3. 'मालविकाग्निमित्र' में व्यभिचारिभावों की समालोचना. 4. 'विक्रमोर्वशीय' में व्याभिचारिभावों की समालोचना. 5. 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में व्यभिचारिभावों की समालोचना। उपसंहार। परिशिष्ट । सन्दर्भग्रन्थ - सूची।

31. सरकार (कृष्णकान्त)
अथर्ववेद के दार्शनिक सूक्तों का भाष्यगत विमर्श।
निर्देशिका : प्रो. सुषमा राणा
Th26974

सारांश

अथर्ववेद संहिता में अनेक दार्शनिक सूक्त उपलब्ध होते हैं। इन दार्शनिक सूक्तों में देवता तत्त्व, आत्मतत्त्व (ब्रह्म और जीवात्मा), बन्धन-मुक्ति और सृष्टि उत्पत्ति आदि अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं। इन्हीं दार्शनिक सूक्तों को आचार्य सायण, क्षेमकरण दास त्रिवेदी, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पं. विद्यालङ्कार, हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार, जयदेव शर्मा (वेदालङ्कार) आदि भाष्यकारों के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोधकार्य के प्रथम अध्याय में अथर्ववेद के भाष्यकारों के परिचय और उनकी भाष्य शैलियों का विवेचन किया गया है। द्वितीय अध्याय में अथर्ववेद के दार्शनिक सूक्तों का परिचय दिया गया है। आचार्य सायण के भाष्यानुसार सूक्तों का यज्ञों में विनियोग का उल्लेख किया गया है। तृतीय अध्याय में अथर्ववेदीय दार्शनिक सूक्तों में प्राप्त देवता तत्त्व का विवेचन किया गया है। सूक्तों का जो प्रतिपाद्य विषय है, उसी को देवता कहा जाता है। इन्हीं देवताओं का दार्शनिक विवेचन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में ब्रह्म का स्वरूप विवेचन किया गया है। सबसे बृहत् होने के कारण बहम कहा जाता है। ब्रह्म या आत्मा को वैशेषिक दर्शन में नव द्रव्य के अन्तर्गत माना गया है। भारतीय दर्शनों में परमात्मा को ब्रह्म कहा जाता है। पञ्चम अध्याय में जीवात्मा का विवेचन किया गया है। वैशेषिक दर्शन में आत्मा के दो भेद माना गया है। जीवात्मा को ही आत्मा कहा जाता है। अथर्ववेदीय दार्शनिक सूक्त में जीवात्मा षष्ठ अध्याय में जीवात्मा का बन्धन और मुक्ति विषय का विवेचन किया गया है। जीवात्मा इस जड़ प्रकृति में भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त करता है। सप्तम अध्याय में अथर्ववेदीय दार्शनिक सूक्तों में सृष्टि की उत्पत्ति का विवेचन किया गया है। ब्रह्म या ईश्वर अपनी इच्छा से इस सृष्टि का निर्माण करता है। अथर्ववेद के विभिन्न दार्शनिक सूक्त भौतिककता, अनैतिकता और उद्विग्नता का निरसन करके आध्यात्मिकता का निर्भ्रान्त मार्ग प्रदान करता है। जो भौतिक एवं वैयक्तिक सुखों से उपर उठकर दिव्य और अनन्त सुख प्राप्त कराता है।

विषय सूची

1. अर्थववेद के भाष्यकार और उनकी भाष्य - शैली. 2. अर्थववेदीय दार्शनिक सूक्तों का परिचय. 3. अथर्ववेदीय दार्शनिक सूक्तों में देवता तत्व. 4. अथर्ववेदीय दार्शनिक सूक्तों में ब्रह्म. 5. अर्थववेदीय दार्शनिक सूक्तों में जीवात्मा. 6. अथर्ववेदीय दार्शनिक सूक्तों में बन्धन और मुक्ति. 7. अथर्ववेदीय दार्शनिक सूक्तों में सृष्टि - प्रक्रिया । उपसंहार। सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची।

32. सापकोटा, यतिराज

श्रीमद्भगवगीतारामानुजभाष्ये तात्पर्यचन्द्रिकाटीकायाः समीक्षणम्

निर्देशक : प्रो. अवधेश प्रताप सिंह

Th26976

सारांश

विश्वस्य प्राचीनतमेषु दर्शनेषु भारतीयदर्शनस्य ख्यातिः जगति प्रसिद्धैव। दर्शनशब्दस्य व्युत्पत्तिः क्रियते चेत्-दृश्यते यथार्थतया अवगम्यते ज्ञायते पदार्थतत्वम् अनधिगतविषयोऽपूर्वो वा अनेन तद् दर्शनम् इति। दृश् धातोः करणेऽर्थे ल्युट् प्रत्ययस्य तत्वज्ञानस्य साधनभूतं दर्शनं विद्यते। दर्शनशब्दस्यार्थः केवलं बाह्यपदार्थानां चाक्षुष - घ्राणज - रासन - श्रौतत्वाचमनादिसर्वविधज्ञानाय आत्मतत्वज्ञानाय च साधनरूपाः पन्थाः विचारो वा तद्दर्शनम्। शोधार्थिना मया 'श्रीमद्भगवद्गीतायाः रामानुजभाष्ये तात्पर्यचन्द्रिकाटीकायाः समीक्षणम्' इति विषये शोधो विहितः। तत्र मया शोधप्रारूपानुसारं प्रथमाध्यायत एव अर्जुनविषादयोगः, सांख्ययोगः, कर्मयोगः, ज्ञानकर्मसत्रयासयोगः इत्यादीनां विषये सम्यक्तया तात्पर्यचन्द्रिकाटीकायाः समीक्षा विहिता। तत्र समान्यतया भावार्थस्तथा तात्पर्यटीकायानुसारं भावार्थः शब्दार्थ प्रकटितः। शोधेऽस्मिन् प्रायः सर्वेषामेव विषयाणां समीक्षणं कृतमस्ति। इत्यत्र धर्मशब्देन उपायान्तरस्य चिन्तनम्। अतः उपायम् उपेयं च मत्वा कर्म कुरू । भगवत उपादेशानन्तरम् अर्जुन उवाच-'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत। स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तवा।

विषय सूची

1. अर्जुनविषादसांख्यकर्मज्ञानकर्मसन्यासयोगानामध्ययनम्. 2. कर्मसन्यासज्ञानविज्ञानक्षरब्रम्हयोगानामध्ययनम्. 3.राजविद्याराजगुह्यविभूतिविस्वरूपदर्शनभक्तियोगानामध्यय.4.क्षेत्रक्षेत्रज्ञगुणत्रयविभागपुरूषोतमयोगानामध्ययनम् 5. श्रद्धात्रयमोक्षसन्यासयोगानामध्ययनम्। उपसंहार। सन्दर्भग्रन्थसूची व संकेताक्षरसूची।

33. सुशील कुमार

इक्कीसवीं शताब्दी के संस्कृत उपन्यासों में युगबोध।

निर्देशक : प्रो. भारतेन्दु पाण्डेय

Th26977

सारांश

समाज में एक धारणा प्रचलित है कि संस्कृत साहित्य में उपन्यास की परम्परा नही थी, परन्तु आधुनिक लेखकों नें अपनी कलम से संस्कृत जगत् में भी उपन्यासों को आकार दिया। इसके विपरीत कुछ विद्वानों का मानना है कि संस्कृत में साहित्यिक कहानियाँ है, जिनमें वस्तुतः उपन्यास की परम्परा छिपी है । दशकुमाचरितम्, कादम्बरी आदि प्राचीन उपन्यास ही है । यद्यपि उपन्यास का आधुनिक ढाँचा यूरोप से अवश्य आया, तथापि मूल रूप से भारत नें कादम्बरी और दशकुमारचरितम् जैसे उपन्यासों को पहले ही जन्म दे दिया था। ये उपन्यास समसामयिक विषयों से परिपूर्ण हैं । समसामयिक परिस्थितियों के ज्ञान की अवधारणा ही युगबोध है । समसामयिक परिस्थितियों में किसी काल की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दार्शनिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थितियाँ सम्मिलित मानी जाती हैं । अतः उपन्यासों के सन्दर्भ में युग बोध का अर्थ है– सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दार्शनिक , धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से निश्चित कालखण्ड को जानना, उस पर विचार विमर्श करना व समझना है । इक्कीसवीं शताब्दी में लिखे गये उपन्यास उपर्युक्त युगबोध से ओतप्रोत हैं ।

विषय सूची

1. युगबोध का अर्थ एवं स्वरूप. 2. संस्कृत उपन्यास का उद्भव एवं स्वरूप. 3. समीक्ष्य उपन्यासों का कथासार. 4. समीक्ष्य उपन्यासों में सामाजिक युगबोध. 5. समीक्ष्य उपन्यासों में धार्मिक व सांस्कृतिक युगबोध. 6. समीक्ष्य उपन्यासों में आर्थिक युगबोध. 7.समीक्ष्य उपन्यासों में दार्शनिक युगबोध. 8. समीक्ष्य उपन्यासों में राजनैतिक युगबोध । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ - सूची।

34. सुशीला

संस्कृत डिम रूपकों का नाट्यशास्त्रीय समालोचन।

निर्देशक : प्रो. रंजन कुमार त्रिपाठी

Th26978

सारांश

भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा एक सुदूर पूर्ववर्ती काल से परिवर्द्धित एवं परिमार्जित होती हुई अद्यतन काल तक चली आई है। वैदिक काल से लेकर आज तक इसकी अक्षुण्ण धारा प्रवाहित रही है। संस्कृत साहित्य को सामान्यतः दो भागों में विभक्त किया जाता है- (1) वैदिक संस्कृत साहित्य, (2) लौकिक संस्कृत साहित्य। प्रथम अध्याय में डिम के स्वरूप एवं परम्परा की विस्तृत विवेचना के अनन्तर प्रमुख लक्षणग्रन्थों के लक्षणों का समावेश करते हुए डिम रूपक की सम्पूर्ण परम्परा एवं स्वरूप का निरूपण किया गया है। द्वितीय अध्याय में ही त्रिपुरदाह, महेन्द्रविजय, श्रीकृष्णविजय, वीरभद्रविजय तथा त्रिपुरदहन की कथावस्तु का अंकशः वर्णन किया गया है। तृतीय अध्याय में डिमरूपकों की कथावस्तु के विकास में कथावस्तु योजना, चतुर्थ अध्याय में डिमरूपकों की पात्र योजना पर विचार किया गया है। पंचम अध्याय में सबसे प्रमुख रस तत्व का विवेचन किया गया है। षष्ठ अध्याय में छन्द - योजना पर प्रकाश डाला गया है जिसमें प्रतिपाद्य सभी डिम रूपकों में लक्षणपूर्वक छन्दों की स्थिति का विवेचन करते हुए कतिपय पद्यों को उदाहरण के रूप में छन्द लक्षणों पर घटाया गया है तथा प्रत्येक अंक में सभी छन्दों को स्थिति का भी संकेत तालिका के द्वारा दिया गया है। सप्तम अध्याय में विवेच्य सभी डिम रूपकों में अलंकारों की स्थिति का निरूपण है। जिसके अन्तर्गत डिम रूपकों में प्रयुक्त शब्दालंकारों, अर्थालंकारों तथ उभयालंकारों की योजना का निदर्शन किया गया है। उसके अनन्तर तालिका के माध्यम से प्रतिपाद्य डिम रूपकों के अलंकारों को तालिका बद्ध किया गया है। इस प्रकार प्रतिपाद्य डिम-रूपकों की विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्णविजय के अतिरिक्त अन्य सभी डिमरूपकों में डिम-अपेक्षित सभी आवश्यक नाट्य तत्त्वों का समावेश किया गया है। डिमरूपक नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों की दृष्टि से परिपूर्ण व समृद्ध हैं। इस प्रकार डिम-विषयक समालोचन करने के अनन्तर मैंने यह पाया कि डिम-रूपकों के अनुसंधान क्षेत्र की सामग्री को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर उपेक्षित प्रायः इस विधा में नवीन सृजन हेतु अनवरत प्रयास की आवश्यकता है। डिम-रूपक साहित्य के कतिपय अस्पृष्ट पक्षों के अन्वेषण से मेरा उक्त विषय पर शोध करना सार्थक प्रतीत होता है। अनुद्धाटित पक्षों पर प्रकाश डाल मुख्यधारा से जोड़ना मेरे शोधकार्य का उद्देश्य है। आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट शास्त्रीय-सिद्धान्तों को लक्ष्य में रखते हुए गतिशीलता हेतु नवीन सृष्टियों को स्वीकार करते हुये (श्रीकृष्णविजय के परिप्रेक्ष्य में) डिम-रूपकों का डिमत्व पूर्णतया सिद्ध है।

विषय सूची

1. डिम-रूपक परंपरा एवं डिम-रूपकारों का परिचय. 2. डिम रूपकों की कथावस्तु. 3. डिम रूपकों में कथावस्तु-विवेचना. 4. डिम-रूपकों में पात्रयोजना. 5. डिम-रूपकों में रस-योजना. 6. डिम रूपकों में छन्दः योजना. 7. डिम रूपकों में अलंकार योजना । परिशिष्ट । उपसंहार। सन्दर्भ-ग्रन्थसूची।

35. सुहासिनी

संस्कृत स्वनों का मुक्तविकल्पन : एक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन।

निर्देशक : प्रो. बलराम शुक्ल

Th26979

सारांश

मुक्तविकल्पन स्वनिम के निर्धारण के लिये प्रयुक्त वितरण का एक प्रकार है। मुक्तविकल्पन की प्रवृत्ति संस्कृत के अतिरिक्त विश्व की अन्य भाषाओं में भी अभिलक्षित होती है किन्तु मुक्तविकल्पन की जैसी प्रचुरता और विविधता संस्कृत में दिखायी देती है वैसी संभवतः किसी अन्य भाषा में नहीं। संस्कृत में स्वनों के मुक्तविकल्पन का यह अतिशय इसके ऐतिहासिक विकास, सातत्य, भौगोलिक स्थिति एवं विस्तार, क्षेत्रीय प्रभेद, अन्य भाषाओं के साथ सम्पर्क तथा भाषिक आदान इत्यादि से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को सङ्केतित करता है। प्रथम अध्याय का शीर्षक भाषाविज्ञान में मुक्तविकल्पन का सिद्धान्त है जिसमें भाषाविज्ञान में मुक्तविकल्पन के सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन है। मुक्तविकल्पन से अभिप्राय है दो या अधिक स्वनों का समान परिवेश में घटित होकर व्यतिरेकी अथवा कार्यात्मक न होना। इसमें मुक्तविकल्पन के भेदोपभेद की विस्तारपूर्वक विवेचना है। द्वितीय अध्याय का शीर्षक संस्कृत में मुक्तविकल्पन की प्रकृति है। इस अध्याय में संस्कृत भाषिक चिन्तन में स्वनिम की अवधारणा पर चर्चा है। इसमें संस्कृत के संदर्भ में मुक्तविकल्पन के सिद्धान्त की समीक्षा की गई है और संस्कृत कोष आदि के अध्ययन से एकत्रित शब्दों के आधार पर संस्कृत में मुक्तविकल्पित स्वन-युग्मों की सूची दी गयी है। तृतीय अध्याय का शीर्षक मुक्तविकल्पित स्वनों वाले शब्दों के स्रोत है। इस अध्याय में उन स्रोत ग्रन्थों की चर्चा की गयी है। चतुर्थ अध्याय का शीर्षक मुक्तविकल्पित स्वनों का सैद्धान्तिक विश्लेषण है। इस अध्याय में सर्वप्रथम मुक्तविकल्पन के कारणों की चर्चा की गयी है। कारणों की चर्चा के अनन्तर संस्कृत में घटित होने वाले मुक्तविकल्पन की अन्य सजातीय भाषाओं विशेषकर प्राकृत भाषा के मुक्तविकल्पन से तुलना की गयी है। पञ्चम अध्याय का शीर्षक मुक्तविकल्पित स्वनों का साङ्ख्यिकीय विश्लेषण है। विभिन्न स्रोतों से एकत्रित स्वनों में मुक्तविकल्पन का विश्लेषण करते हुए वर्णों के वर्गीकरण के आधार पर मुक्तविकल्पन की प्रवृत्ति और प्रायिकता को समझकर उससे अन्य क्षेत्रों में सहायता ली जा सकती है।

विषय सूची

1. भाषाविज्ञान में मुक्तविक्लपन का सिद्धान्त. 2. संस्कृत में मुक्तविकल्पन की प्रकृति. 3. मुक्तविकल्पन से संवलित शब्दों के स्त्रोत. 4. मुक्तविकल्पन का सैद्धान्तिक विश्लेषण. 5. मुक्तविकल्पित स्वनों का साङ्ख्यकीय विश्लेषण । उपसंहार। सन्दर्भ - ग्रन्थसूची। परिशिष्ट ।

36. सोनिया

विशिष्टाद्वैत-सम्मत वादशास्त्र (न्यायपरिशुद्धि की न्यायसार टीका के परिप्रेक्ष्य में)।

निर्देशक : प्रो. ओमनाथ बिमली

Th26980

सारांश

विशिष्टाद्वैतसम्मत वादशास्त्र (न्यायपरिशुद्धि की न्यायसार टीका के परिप्रेक्ष्य में) प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में पांच अध्याय हैं, जिनमें १३वीं-१४वीं शताब्दी के आचार्य वेङ्कटनाथ की न्यायपरिशुद्धि और न्यायपरिशुद्धि पर लिखित श्रीनिवासदास की टीका न्यायसार के आधार पर विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के वादशास्त्र का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है| भारत में वाद, शास्त्रार्थ की परम्परा अत्यन्त प्राचीन और सतत रही है| शास्त्रार्थ वाद का व्यवहारिक पक्ष है| इस शास्त्रार्थ और वाद को नियमबद्ध करने के लिए भारत में वादशास्त्र का विकास हुआ| वादशास्त्र के अन्तर्गत मुख्यतः निम्नलिखित विषयों का अध्ययन किया जाता है- क)कथा, कथा की प्रकृति एवं स्वरूप, कथा के भेद और कथा के अङ्ग आदि ख)वाद के साधन जैसे- छल, जाति, निग्रहस्थान और हेत्वाभास आदि| वादशास्त्र के क्षेत्र में मुख्यतः न्यायदर्शन के आचार्यों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, परन्तु विशिष्टाद्वैत के वेङ्कटनाथ ने १३वीं-१४वीं शताब्दी में न्यायपरिशुद्धि ग्रन्थ लिखकर वादशास्त्र के क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य किया है| इस ग्रन्थ में आचार्य वेङ्कटनाथ ने न्याय दर्शन के सिद्धांतों का केवल खण्डन ही नहीं किया, अपितु न्याय दर्शन के कतिपय मतों को संशोधित भी किया है| इसके अतिरिक्त उन्हें वादशास्त्र के संदर्भ में न्याय दर्शन के जो-जो सिद्धान्त तर्कपूर्ण लगे, वहाँ-वहाँ उनका पूर्णतया समर्थन भी किया है| प्रस्तुत शोधप्रबन्ध का अध्यायवार सार इस प्रकार वर्णित है- शोधप्रबंध का प्रथम अध्याय परिचयात्मक है जिसमें ग्रन्थकार वेङ्कटनाथ और टीकाकार श्रीनिवासदास का विस्तृत परिचय दिया गया है| द्वितीय अध्याय में कथा, कथा के अंग, कथा के भेद एवं कथा के स्वरूप के विषय में विशिष्टाद्वैत और न्यायदर्शन के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया है| तृतीय अध्याय में निग्रहस्थानों की विस्तार से चर्चा की गई है और न्यायदर्शनसम्मत निग्रहस्थानों से तुलना भी की गई है| चतुर्थ अध्याय में निरनुयोज्यानुयोग निग्रहस्थान के अंतर्गत छल और जाति का एवं पञ्चम अध्याय में प्रमाणाभासों की चर्चा के गई है|

विषय सूची

1. परिचय. 2. कथा. 3. निग्रहस्थान. 4. निरनुयोज्यानुयोग. 5. प्रमाणाभास। उपसंहार । सन्दर्भ - ग्रन्थ सूची।

37. सोमेन्द्र सिंह

शान्तिभिक्षुशास्त्री - प्रणीत बुद्धविजयकाव्यम् का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विवेचन।

निर्देशिका : प्रो.मीनाक्षी

Th26981

सारांश

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में सामाजिक एवं सांस्कृतिक विचारों को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। 'शान्तिभिक्षुशास्त्रि-प्रणीत बुद्धविजयकाव्यम् का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विवेचना' के प्रथम अध्याय में बौद्ध धर्म, दर्शन की विशेषता व उद्भव पर प्रकाश डाला गया हैं, शान्तिभिक्षु शास्त्री का जन्म स्थान, प्रारंभिक शिक्षा, आन्दोलन, अध्यापन, कार्य, विदेश-प्रवास, पुरस्कार, देहावसान, प्रकाशित ग्रन्थ, अप्रकाशित ग्रन्थों की चर्चा है। 'बुद्धविजयकाव्यम्' का रचनाकाल, बौद्ध साहित्य में महत्त्व, ग्रन्थ की मौलिकता एवं सर्गानुसार संक्षिप्त कथा प्रस्तुत की गयी है। महात्मा बुद्ध का परिचयात्मक विवरण एवं मनःस्थिति का अध्ययन द्वितीय अध्याय में सिद्धार्थ जन्म, मुनि असित की भविष्यवाणी, नामकरण, विद्याग्रहण, विवाह, अन्तःपुर विहार वर्णन है। राज्यकालानुभव, निमित्तदर्शन, वन विहार, अभिनिष्क्रमण, तपश्चर्या बुद्धत्वप्राप्ति, धर्मोपदेश एवं धर्मप्रचार, महापरिनिर्वाण का वर्णन है। तृतीय अध्याय में 'बुद्धविजयकाव्यम्' में सामाजिक उपदेशों का वर्णन है जिसमें शिक्षा, संस्कार, समाज में प्रचलित श्रमण-ब्राह्मण व्यवस्था, वर्ण-विचार, वर्ण व्यवस्था की गवेषणा की गयी है। इस अध्याय के अन्तर्गत अपरिग्रह, जातिव्यवस्था, का प्रचलन उसके दुष्परिणाम, आश्रमाचार में ब्रह्मचर्याश्रय गृहस्थाश्रम, गृहस्थ धर्म, श्रामण्यम् चर्चा की गयी है। चतुर्थ अध्याय में 'बुद्धविजयकाव्यम्' में सांस्कृतिक विचारों के वर्णन में संस्कृति, सांस्कृतिक विचार, अहिंसा, अस्तेय, असत्य भाषण, एकता, पूजा विधि, कर्मवाद की व्याख्या है। बौद्ध धर्म में शान्ति, तप, बलिकर्म विरोध, क्षमा पुनर्जन्म जैसे सिद्धांतों को सम्मिलित किया गया है। शोध प्रबन्ध के अन्तिम पाँचवे अध्याय में बुद्ध के सार्वभौमिक उपदेशों की चर्चा की गयी है। जिसमें सिद्धार्थ द्वारा बोधप्राप्ति के बाद चार आर्य सत्यों का ज्ञान, बौद्ध दर्शन का अमूल्य सिद्धान्त प्रतीत्यसमुत्पाद, निर्वाण निर्वाण के प्रकार निर्वाण का स्वरूप, त्रिशरण आदि पर चर्चा की गयी हैं प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में बौद्ध धर्म के जीवन मूल्यों, आदर्शों, आचार-विचार एवं उनकी मान्यताओं का वर्णन किया है। शोध कार्य से सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा मिलेगा। सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक लोगों की भावनाओं मूल्यों, विश्वासों, व्यवहारों, दृष्टिकोणों और अन्तः क्रियाओं को प्रभावित करते हैं।

विषय सूची

1. बुद्धविजयकाव्यम् की ऐतिहासिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि. 2. महात्मा बुद्ध का परिचयात्मक विवरण एवं मनःस्थिति का अध्ययन. 3.बुद्धविजयकाव्यम में बुद्ध द्वारा सामाजिक उपदेशों का वर्णन. 4. बुद्धविजयकाव्यम् में सांस्कृतिक विचारों का वर्णन. 5. बुद्धविजयकाव्यम् में बुद्ध के सार्वभौमिक उपदेश । उपसंहार। सन्दर्भ-ग्रन्थसूची।

38. हेम चन्द्र

शेषाद्रिसुधीकृत परिभाषाभास्कर : एक अध्ययन।

निर्देशक : प्रो. श्रीवत्स

Th26984

सारांश

समय के साथ - साथ भाषा के स्वरूप में भी परिवर्तन होता है । भाषा की इस परिर्वनशीलता को व्याकरण द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। हजारों वर्ष पूर्व भारतीय समाज में व्यवहार का माध्यम रही संस्कृत भाषा वर्तमान समय में भी अपने मूलरूप में विद्यमान है इसका मुख्य कारण इसका व्याकरण है। आचार्य पाणिनि विचरित अष्टाध्यायी संस्कृत व्याकरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं । पाणिनी से पहले भी बहुत सारे वैयाकरण हुए थे जिनमें से दस वैयाकरणों का उल्लेख स्वयं पाणिनी ने अष्टाध्यायी में किया है ।नागेशभट्ट विचरित परिभाषाशास्त्रविषयक ग्रन्थ 'परिभाषेन्दुशेखर' के अनन्तर परिभाषाशास्त्र पर स्वतन्त्र ग्रन्थों का लेखन लगभग समाप्त हो गया था । सभी आचार्यो में परिभाषेन्दुशेखर को व्याख्यायित करने के लिए टीकाओं, प्रटीकाओं की रचना करने की परम्परा सी चल पड़ी थी । शेषद्रि के परिभाषाभास्कर ग्रन्थ का प्रभाव परवर्ती आचार्यो की टीकाओं में भी परिलक्षित होता है। 'परिभाषेन्दुशेखर की हैमवती टीका का समीक्षात्मक अध्ययन ' इस शोध प्रबन्ध के निष्कर्ष में शोधकर्ता डॉ. अशोक कुमार का कहना है की हैमवती टीका में शेषाद्रिसुधीकृत परिभाषाभास्कर ग्रन्थ का पूर्णप्रभाव परिलक्षित होता है । सम्भवतः परिभाषाविषयक अन्य भी ऐसी टीकाएँ या व्याख्यान होंगे जहां शेषाद्रिसुधी के प्रकृत ग्रन्थ का प्रभाव हो। परिभाषेन्दुशेखर में प्रतिपादिक तर्को की समीक्षा करने का प्रयास किया है। अतः परिभाशेन्दुशेखर की हैमवती आदि टीकाओं में परिभाषाभास्कर के प्रभाव को लेकर भी शोधकार्य होने की सम्भावना है ।

विषय सूची

1. परिभाषाशास्त्र की परम्परा. 2. लक्षण, महत्व एवं प्रकार. 3. शास्त्रत्वसम्पादक प्रकरण. 4. बाधबीजवाचक प्रकरण. 5. शेषार्थकथन प्रकरण । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची। परिशिष्ट ।

M.Phil Desertion

39. आर्य, अभिषेक

अष्टाध्यायीस्थ अलुक् प्रकरण का विश्लेषणात्मक अध्ययन (न्यास और बालमनोरमा के संदर्भ में)।

निर्देशक : प्रो. सत्यपाल सिंह एवं सह निर्देशक : डॉ. सुखराम

40. तापसपाल

पदाङ्कदूतस्य भास्वतीटीकायाः समालोचनात्मकम् अध्ययनम्।

निर्देशक : प्रो. वेद प्रकाश डिंडोरिया

41. नौटियाल, नवीन चन्द्र

पाणिनीय विभाषा सूत्र : एक अध्ययन (न्यास टीका के विशेष सन्दर्भ में)।
निर्देशक : डॉ. आचार्य, धनन्जय कुमार

42. प्रणव कुमार
अजडप्रमातृसिद्धि के आलोक में प्रमाता : एक अध्ययन।
निर्देशक : डॉ. श्रुति राय

43. भाटी, खुशबू
भारतीय एवं पाश्चात्य हस्तरेखा विज्ञान की दृष्टि में दाम्पत्य विमर्श।
निर्देशक : डॉ. राजीव रंजन

44. भाटी, नेहा
प्राचीन स्थापत्य ग्रन्थों में वर्णित नगर - निवेश : वाराणसी नगर के सन्दर्भ में।
निर्देशक : डॉ. उमाशंकर

45. शर्मा, देवेश
शुक्लयजुर्वेद के आद्य अध्याय पंचक का भाषिक पक्ष ।
निर्देशिका : डॉ. करूणा आर्या

46. शैलेन्द्र कुमार
योगसूत्र में अष्टाङ्गयोग एवं आत्मप्रबन्धन।
निर्देशिका : डॉ. मोनिका कंवर राठौड़

47. विजेन्द्र सिंह
अथर्ववेद में ब्रह्म के विविध स्वरूप।
निर्देशक : प्रो. रणजीत् बेहेरा एंव डॉ. विजय शंकर द्विवेदी